भा० दि० जैन परिषद परीक्षा बोर्ड द्वारा स्वीकृत

चरित्र-निर्माण

तृतीय भाग

लेखक तथा संकलनकर्त्ता—
प० उग्रसेन जैन
एम० ए०, एल एल० बी०, एड्वोकेट
रोहतक

प्रकाशक—
अ० भा० दि० जैन परिषद् पब्लिशिंग हाउस,
२०४, दरीबा कलाँ, देहली

द्वितीय बार
१००० प्रति
नवम्बर १९६०

चरित्र-निर्माण

तृतीय भाग

विषय-सूची

— • —

लेखक का नम्र निवेदन

प्यारे पाठको ! 'चरित्र निर्माण' पुस्तक का यह तीसरा भाग तैयार हो गया है, जो आपके हाथों में पहुँच रहा है। तीनों भागों में सरल हिन्दी भाषा में जैन धर्म तथा जैन संस्कृति का बोध पाठकों को कराया गया है।

जिन जिन महानुभाव विद्वान् लेखकों के लेख तथा कवितायें इस पुस्तक में दिये गये हैं, पाठकगण उनसे लाभ उठायेंगे।

इस पुस्तक में जो पाठ दिये गये हैं, वे सब दि० जैन परिषद् परीक्षा बोर्ड के सुझाव के अनुसार ही दिये गये हैं। चरित्र निर्माण के तीनों भागों में आठवीं नवीं तथा दसवीं कक्षाओं के काम का क्रमशः समावेश कर दिया गया है।

इस भाग के लिखने में मुझे अपनी सुपुत्री विद्यावती जैन बी ए, बी टी तथा पं० रघुनाथ जी व्याकरणतीर्थ शास्त्री मुख्य अध्यापक जैन हाईस्कूल रोहतक से बड़ी सहायता मिली है, तदर्थ वे धन्यवाद के पात्र हैं।

जिन लेखक महानुभावों ने इस पुस्तक के लिये अपने लेख तथा कवितायें भेजी हैं, मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ। जिन जिन पुस्तकों तथा पत्रों से कुछ लेखादि लिये गये हैं उनके प्रकाशकों व सम्पादकों के प्रति भी मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

पुस्तक की तयारी में तथा प्रकाशन में कर्मठ तथा उत्साही मास्टर उग्रसैन जी जैन, मन्त्री दि० जैन परिषद् परीक्षा बोर्ड का बड़ा हाथ है, वह धन्यवाद के पात्र हैं।

अन्त में मेरी हार्दिक भावना है कि जैन अजैन सब ही पाठकगण इन पुस्तकों से लाभ उठावें और मेरे उत्साह को बढ़ावें।

रोहतक माघ कृष्णा पंचमी
वीर निर्वाण सम्वत् २४८३
ता० २८-१-५७

उग्रसैन जैन (गोहाना)
एम ए एल एल बी

द्वितीय संस्करण

नोट—इस संस्करण में अब ३२ पाठ हैं। पहले संस्करण में से तीन पाठ एजूकेशन बोर्ड के आज्ञानुसार निकाल दिये गये हैं।

रोहतक ३१-७-१९६०

उग्रसैन जैन

❋ चरित्र-निर्माण ❋

(तृतीय भाग)

इष्ट वन्दना

(१)

मुनि नायकों के वृन्द जिसका स्मरण करते हैं सदा,
जिसका सभी नर अमरपति भी, स्तवन करते हैं सदा।
सद्ग्रन्थ वेद पुराण जिसका, सर्वदा हैं गा रहे,
वह देव का भी देव बस मेरे हृदय में आ रहे॥

(२)

जो अन्त रहित सुबोध ज्ञान और सौम्य स्वरूप है,
जो सब विकारों से रहित, जिसमें अलग भवरूप है।
मिलता बिना न समाधि जो परमात्म जिसका नाम है,
देवेश वह उर आ बसे, मेरा खुला हृद्धाम है॥

(३)

जो काट देता है जगत में, दुख निर्मित जाल को,
जो देख लेता है जगत की, भीतरी भी चाल को।
योगी जिसे हैं [illegible] सर्वत, अन्तरात्मा जो स्वयम्,
देवेश [illegible] हृदय पुर का निवासी हो स्वयम्॥

(४)

सवल्य के ममाग को दिखला रहा है जो हमे,
जो जनम के या मरण के पडता न दुख सदोह मे।
अशरीर हो त्रैलोक्यदर्शी दूर है कुकलक से,
देवेश वह आकर लगे मेरे हृदय के अक से॥

(५)

अपना लिया है निखिल तनुधारी-निवह ने ही जिसे,
रागादि दोष व्यूह भी छू तक नही सकता जिसे।
जो ज्ञानमय है, नित्य है, सर्वेन्द्रियो मे हीन है,
जिनदेव त्वेश्वर वही मेरे हृदय म लीन है॥

(६)

ससार की सब वस्तुओ मे ज्ञान जिसका व्याप्त है,
जो कर्म बधन हीन, बुद्ध, विशुद्ध, सिद्धि प्राप्त है॥
जो ध्यान करने से मिटा देता सकल कुविकार को,
देवेश वह शोभित करे मेरे हृदय-आगार को॥

(७)

तम सघ जैसे सूर्य-किरणो को न छू सकता कही,
उस भांति कर्म-कलक दोषाकर जिसे छूता नही।
जो है निरजन वस्त्वपेक्षा, नित्य भी है, एक है,
उस आप्त प्रभु की शरण मे हूँ प्राप्त, जो कि अनेक है॥

(८)

वह दिवस नायक लोक का जिसमे कभी रहता नही,
त्रैलोक्य भासक ज्ञान रवि पर है वहाँ रहता सही।
जो देव स्वात्मा मे सदा स्थिर रूपता को प्राप्त है,
मैं हूँ उसी की शरण मे, जो देववर है, आप्त है॥

(९)

अवलोकने पर ज्ञान म जिसके सकल ससार ही,
है स्पष्ट दिखता, एक से है दूसरा मिलकर नही।
जो शुद्ध, शिव है शान्त भी है, नित्यता को प्राप्त है,
उसकी शरण को प्राप्त हूँ, जा देववर है, आप्त है॥

(१०)

वक्षावली जसे अनल की लपट से रहती नही,
त्या शोक म मय मान को रहने दिया जिसने नही।
भय, मोह नाद विवाद, चिता भी न जिसको व्याप्त है,
उसकी शरण म हूँ गिरा, जो देववर है, आप्त है॥

(सामायिक पाठ से)

प्रश्नावली

१—इस कविता को मुखाग्र सुनाइये ?

२—इस कविता म जा इष्टदेव क गुण वर्णन किए गए हैं, उन्हें अपने शब्दा मे सुनाइए।

३—दूसरे सातवें और दसवें छन्दा का भावार्थ बताइये।



आत्मा-परमात्मा

— o —

जन धम का महत्वपूण सिद्धान्त है कि प्रत्येक आत्मा परमात्मा बन सकता है। पतित से पतित आत्मा भी महात्मा और परमात्मा हो सकता है यदि वह आत्मोन्नति के माग पर दृढ चित्त होकर आरूढ हो। जिन जिन आत्माओ न परमात्म पद प्राप्त किया है व सब हम जसी साधारण अवस्था म ही थी। शक्ति की अपेक्षा आत्मा परमात्मा मे कोई भद नही है, अन्तर केवल इतना ही है साधारण आ मा म वह शक्ति व्यक्त नही हुई है। परमात्मा मे वह शक्ति व्यक्त हो गई है। जनधम का उपदेश यह नही है कि आत्मा परमात्मा का अंश है, कारण यह सिद्धान्त आत्मा की अपनी स्वतन्त्रता पर कुठाराघात करता है। आत्मा और परमात्मा एक ही है परमात्मा भी आत्मा ही है वह उसका उत्कृष्ट स्वरूप है। प्रत्येक आत्मा यदि चाहे परमात्म पद को प्राप्त कर सकता है। यह भाव कितना उत्साहवद्धक है। "प्रत्येक आत्मा परमात्मा का अंश है यह भाव कितना परतन्त्रता परिचायक है। जनधम ही ऐसा धम है जो आत्मा को पूण स्वतन्त्रता का उपदेश देता है। इसीलिए जनधम का अनुयायी परमात्मा की पूजा तथा उपासना करते हुए भी अपने को परमात्मा का सेवक या दास नही समझता। वह यह प्राथना करता है कि हे भगवन्! शक्ति की अपेक्षा मैं और आप समान हैं। मैं चाहता हूँ कि मैं भी आपके बतलाए हुए माग पर चल कर आप जसा हो जाऊँ। यही श्रद्धान

प्रत्येक आत्मा का परमात्मा बनने मे सहायक होना है। यही आत्मा की पूर्ण स्वतन्त्रता जनधर्म की महान् देन है।

अनादि काल से यह ससारी जीव कर्मों के वशीभूत होकर चतुर्गति रूप ससार मे परिभ्रमण करता चला आ रहा है और मिथ्यात्व तथा अज्ञान के कारण निज स्वरूप को न जानकर कर्म जनित अवस्थाओ म ही तन्मय हो कर उनके अनुकूल आचरण करते हुए पर समय रूप हो रहा है। यही जीव जब कर्म जनित अवस्थाओ को भेद विज्ञान के द्वारा अपना निज स्वभाव न जान कर और अपने निज स्वभाव का सम्यक् प्रकार पहचान कर अपने ध्येय की ओर अर्थात् परमात्म पद की प्राप्ति की ओर आगे बढता है तो रत्नत्रय का आराधन करते हुए पूर्व सञ्चित कर्मों के बन्धन को धीरे धीरे परन्तु दृढता पूर्वक काटता एव नवीन कर्म बन्धन से अपनी रक्षा करता हुआ साधु अवस्था मे वह साधक अपनी आत्मा को प्रतिदिन अधिकाधिक निर्मल एव शुद्ध करता हुआ आगे बढता है। अन्त मे एक ऐसा समय आता है कि जब वह साधु ज्ञाना-वरणीय, दर्शनावरणीय मोहनीय एव अन्तराय इन चार घातिया कर्मों को नष्ट करके अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख तथा अनन्त वीर्य का स्वामी अरहन्त परमात्मा या जीवनमुक्त परमात्मा हो जाता है। इस जीवनमुक्त (अर्हत) परमात्मा का ज्ञान सूर्य जो अब तक कर्म रूपी मेघो से आच्छादित व विकृत हो रहा था पूर्ण ज्ञान प्रकाश से प्रज्वलित हो उठता है। उसके ज्ञान मे ससार के समस्त पदार्थ अपने अपने भूत भविष्यत् तथा वर्तमान काल सम्बन्धी समस्त गुणो तथा पर्यायो के लिए हुए युगपत झलकने लग जाते हैं। ज्ञान प्रकाश के साथ साथ वह जीवनमुक्त आत्मा दिव्य अलौकिक, अनुपम आनन्द मे मग्न हो जाता है। इस अनुपम आनन्द अमृतरस का

प्रतिक्षण पान करता हुआ उसमे लीन रहता है । ससार के लाभार्थ उस जीवमुक्त परमात्मा की दिव्य वाणी का सचार होता है, जिसके श्रवण से अनेक प्राणियो को ज्ञान की प्राप्ति होती है और निज आत्मोन्नति की ओर अग्रसर होते हैं ।

उपरोक्त जीवमुक्त अवस्था मे रहते एव ससार के अनेक भव्य जीवो का कल्याण करते जब नाम, आयु, गोत्र तथा वेद नीय इन चार अघातिया कर्मों का भी नाश हो जाता है तो आयु कर्म क्षीण हो जाने पर उसकी परम शुद्ध आत्मा भौतिक शरीर को तजकर कर्म बधन से सर्वथा मुक्त हो कर लोक के शिखर पर विराजमान हो जाती है जहाँ वह शुद्ध सिद्ध परमात्मा सदा के लिये अनुपम दिव्य आनन्द मे मग्न रहता है एव उसकी अनन्त दिव्य ज्ञानज्योति मे ससार के समस्त पदार्थ अपने अनन्त गुण व पर्यायो सहित आलोकित होते रहते हैं, कर्म बधन से सर्वथा मुक्त हो जाने पर कोई ऐसी शक्ति शेष नही रहती जो उस परमात्मा को फिर नवीन कर्म बधन मे डाल सके । उसके शुद्ध चिदानन्द स्वरूप मे विकार उत्पन्न कर सके या उसकी दिव्य आत्मिक शक्तियो को आच्छादित कर सके । इस प्रकार वह सिद्ध परमात्मा अपने शुद्ध चिदानन्द स्वरूप मे शास्वत, मग्न एव विराजमान रहता है । सिद्ध अवस्था मे यह आत्मा कृतकृत्य हो जाता है, जो कुछ करना था वह कर चुकता है और कुछ करना शेष नही रहता । जिस प्रकार आकाश रजयुक्त नहीं होता अपने स्वभाव मे स्थिर रहता है, किसी के द्वारा घाता नही जाता और अत्यन्त निर्मल होता है उसी प्रकार मुक्तात्मा अपनी निरावरण अनन्त शक्ति सहित अपने अनन्त दर्शन तथा अनन्त ज्ञान स्वरूप को लिये परम ज्ञानानन्द मे अतिशय मग्न निरन्तर ही लोक के शिखर स्थित मोक्ष स्थान मे प्रकाशमान होता है । कहा है—

लोकाग्र शिखरावासी सवलोक शरण्यक ।
सव देवाधिको दवा ह्यष्टमूर्त्ति दयाध्वज ॥
ग्रच्छद्योऽनभेद्यश्च सूक्ष्मो नित्या निरजन ।
ग्रजरोह्यमरश्चैव शुद्ध सिद्धो निरामय ॥
ग्रक्षयोह्यव्यय शान्त शान्ति कल्याणकारक ।
स्वयभू विश्व द्रष्टा च कुशल पुरुषोत्तम ॥
(आप्तस्वरूप)

ग्रर्थात्—सिद्ध परमात्मा लोकाग्र शिखर पर वास करते हैं, सम्पूर्ण ससार के प्राणियो के लिये शरणभूत हैं। सब देवो के स्वामी महादेव हैं। सम्यक्त ग्रादि ग्रष्टगुणधारी ग्राप्त मूर्ति हैं। दया की ध्वजा हैं छद रहित हैं, भदभाव से रहित तथा ग्रतीन्द्रिय ग्रौर सूक्ष्म हैं। ग्रविनाशी है। कर्माञ्जन रहित निरजन हैं, ग्रजर हैं, ग्रमर हैं, शुद्ध हैं, सिद्ध हैं बाधारहित है, ग्रक्षय हैं, ग्रव्यय हैं, शान्त हैं, शान्ति व कल्याण के कर्त्ता हैं, स्वयम्भू है विश्वदर्शी हैं, मगलमय हैं, परमात्मा हैं। सिद्धि सोपान मे प० जुगलकिशोर जी मुख्तार लिखते हैं— Mataalun Darukta

ग्रावागमन विमुक्त हुए, जिनको करना कुछ शेष नही।
ग्रात्मलीन, सब दोष हीन, जिनके विभाव का लेश नही॥
राग द्वेष भय मुक्त, निरजन, ग्रजर ग्रमर पद के स्वामी।
मगलभूत, पूर्ण विकसित, सत् चिदानन्द जो निष्कामी॥
ऐसे हुए ग्रनन्त सिद्ध ग्रौ वर्तमान हैं सम्प्रति जो।
ग्रागे होग सकल जगत म, विबुध जनो मे सस्तुत जो॥
उन सबको नतमस्तक हो, मैं वन्दूँ तीनो काल सदा।
तत्स्वरूप की शीघ्र प्राप्ति का, इच्छुक होकर सहित मुदा॥

प्रश्नावली

१—आत्मा से परमात्मा बनने का क्रम वर्णन कीजिए ?

२—परमात्मा के भेद बताइए, उनमें क्या अन्तर होता है ?

३—परम शुद्ध सिद्ध अवस्था का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए ?

४—"आवागमन विमुक्त हुए " "

"तत्स्वरूप की शीघ्र प्राप्ति का इच्छुक होकर सहित मुदा"

उपर्युक्त छन्दों का भावार्थ समझाइए।

युग प्रवर्त्तक आद्य-तीर्थङ्कर
भगवान् ऋषभदेव

(ले०—श्री पं० मुक्तारसिंह जैन 'सिन्' बी० ए० बी० टी० साहित्यालंकार)

—०—

इस युग के आद्य प्रवर्तक तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभदेव हैं। भोग भूमि के बाद कर्मभूमि की सम्पूर्ण रचना और वर्ण-व्यवस्था आपने की थी। भगवान् स्वयं सर्वप्रथम आत्म-कल्याणकारी मार्ग पर चले तथा सम्पूर्ण जगत को इसका पथ प्रदान कर गए। इस अनादि संसार में अनादि काल से ही धर्म प्रवर्तक (तीर्थङ्कर) होते आये हैं तथा अनन्त तीर्थङ्कर हो चुके हैं। इस बार सर्व प्रथम तीर्थकर (धर्म प्रवर्तक) भगवान् ऋषभदेव जी हुए हैं। उनको मोक्ष गये ७६ अंक प्रमाण वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। भगवान् ऋषभदेवजी के जीवन की झलक यहाँ जैन शास्त्रानुसार दी जा रही है।

आदिनाथ-ऋषभदेव के पिता १४ वें कुलकर श्री नाभिराय और माता श्री मरुदेवी था। मरुदेवी जम्बू द्वीप के ऐरावत क्षेत्र के प्रथम तीर्थंकर के पिता की जुगलिनी थी जो सौधर्मेन्द्र द्वारा लाई जाकर श्री नाभिराय को विवाही गई थीं। भगवान् ऋषभदेव आषाढ कृष्णा द्वितीया को गर्भ में आये। आपके गर्भ में आने के ६ मास पहले से ही कुबेर ने राजभवन में नित्यप्रति

तीन बार रत्न वर्षा करनी प्रारम्भ करदी थी, जो भापके जन्म पयन्त इसी प्रकार होती रही। गर्भ में आने पर माता मरुदेवी ने १६ शुभ स्वप्न देखे जिनका अलग अलग शुभ फल उनके पति श्री नाभिराय ने अपने अवधिज्ञान से जानकर मरुदेवी को सुनाया और कहा कि वज्रनाभि चक्रवर्ती का जीव सर्वार्थ सिद्धि से चलकर तुम्हारे गर्भ में आया है और वही होनहार प्रथम तीर्थंकर है। यह सुनकर उन्हे परम हर्ष प्राप्त हुआ। इन्द्रादिक देवो ने भी अयोध्या भगवान् की जन्मभूमि में आकर अत्यानन्द पूर्वक भगवान् का 'गर्भ महोत्सव' मनाया।

पूर्व जन्मों के उत्तम संस्कार और तपोबल से भगवान् को गर्भावस्था ही से मति श्रुति और अवधिज्ञान प्राप्त थे जिनके प्रभाव से इस समय माता मरुदेवी गूढातिगूढ प्रश्नो के उत्तर भी बड़ी सुगमता के साथ दे देती थी, भगवान् के गर्भवास के समय अन्य स्त्रियो के समान माता का शरीर न तो कृश पीत या पीडित हुआ, न उदर-वृद्धि हुई न त्रिवली भंग हुई और न स्तनों के मुख पर कालिमा ही आई। माता मरुदेवी के शरीराङ्ग और मुखाकृति सब प्रकार सर्वाङ्ग सुन्दर बने रहे।

भगवान् का जन्मोत्सव

शुभ मिति चैत्र कृष्णा ९ के प्रातःकाल में श्री ऋषभदेव का जन्म हुआ। इस समय सम्पूर्ण त्रिलोक में एक ऐसी आनन्दमयी विद्युत लहर फैली, जिससे प्राणीमात्र (नारकी जीवो तक) ने क्षण भर के लिये अपूर्व आनन्द प्राप्त हुआ। इन्द्रादिक देवो के आसन अकस्मात् कम्पायमान हुए। उन्होंने अपने अवधिज्ञान से भगवान् का जन्म हुआ जान, अयोध्या में आ, भगवान् को सुमेरु पर्वत पर ले जाकर उनका 'जन्माभिषेक' किया। तदनन्तर अतिशय प्रसन्नता पूर्वक सब देव नृत्य गानादि महोत्सव के साथ अयोध्या-

पुरी में लौट आए और माता पिता की भी बहुत प्रकार स्तुति की। श्री नाभिराय ने भी इस महा पुण्याधिकारी पुत्र का जन्मोत्सव बड़े ठाठ से मनाया। जिसमें इन्द्र ने १२½ करोड़ जाति के देवोपनीत वादित्रों की अत्यन्त सुराली और कर्णप्रिय तान पर आनन्द नाटक दिखला कर ताण्डव नृत्य किया। इन्द्र ने ही भगवान का नाम श्री ऋषभदेव रखा।

बाल्य काल

बालक ऋषभ बाल क्रीडा तथा चित्त विनोद करता हुआ दिन प्रतिदिन द्वितीया के चन्द्रमा के समान वृद्धि को प्राप्त होने लगा। भगवान का किसी भी गुरु से किसी भी प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने की आवश्यकता न हुई क्योंकि वे स्वयं ही सब के शिक्षक और गुरु रहे उनमें बुद्धि नैपुण्य, दीर्घदर्शिता और कला चातुर्य आदि अनेक गुण जन्म ही से विद्यमान थे।

गार्हस्थ्य-जीवन

कौमार काल व्यतीत होने पर भगवान ऋषभ ने जब युवावस्था में पदार्पण किया तो पिता नाभिराय ने उनके समक्ष विवाह प्रस्ताव रखा। दूसरे सब मनुष्यों को अपने आदर्श चारित्र के अनुकूल चलाने तथा पूज्य पिता की आज्ञा का उल्लंघन न करने के ख्याल से आपने केवल ॐ अक्षर का उच्चारण करके अपनी स्वीकृति प्रदान की। कच्छ और महाकच्छ नामक दो राजाओं की यशस्वी तथा सुनन्दा नाम की दो महासती सुशीला और सुलक्षणा व रूपवती कन्याओं के साथ आपका विवाह कर दिया गया।

यशस्वी के उदर से 'भरत' आदि १०० पुत्र और ब्राह्मी नाम की एक पुत्री उत्पन्न हुई। सुनन्दा के बाहुबलि तथा सुन्दरी दो"

सन्तान उत्पन्न हुई। इनमें भरत तो प्रथम चक्री हुए और उन्हीं के नाम पर यह देश 'भारतवर्ष' कहलाया तथा उन्होंने ही 'ब्राह्मण' नाम का चौथा वर्ण स्थापित किया। बाहुबलि प्रथम कामदेव कहलाये। आदिनाथ के सभी पुत्र तद्भव मोक्षगामी थे और भगवान् ने ही अपने सब पुत्र पुत्रियों को सब प्रकार की शिक्षा दी थी, परन्तु विशेष रूप से ब्राह्मी को अक्षरावली अ आ इ (इसी कारण इस लिपि का नाम ब्राह्मी लिपि) सुन्दरी को अंक गणित और दोनों को ही अन्य सब स्त्रियोपयोगी शिक्षा दी थी। भरत को राज्योचित 'नीतिशास्त्र' विशेष रूप से पढ़ाया था।

तीसरे काल के अन्त में कल्प वृक्षों के नष्ट होने पर जब प्रजा व्याकुल होकर नाभिराय के पास आई तो उन्होंने प्रजा के मुखियाओं को श्री ऋषभदेव के पास जाने की आज्ञा दी। श्री ऋषभदेव ने उनके रहन-सहन का यथोचित प्रबन्ध कर दिया। अनेक राज्य स्थापित किए। नव राजाओं को नीति-शास्त्र की शिक्षा दी और प्रजा को राजनीति के अनुकूल चलने के लाभ बताए और तदनुसार आचरण करने को कहा।

वर्णों की स्थापना

साथ ही प्रजा को आजीविका सम्बन्धी असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, विद्या और शिल्प इन षट कर्मों की शिक्षा देकर सुगमता के लिए उसे (प्रजा को) निम्न प्रकार तीन वर्णों में विभाजित कर दिया।

शस्त्र धारण कर असि (तलवार) कर्म द्वारा आजीविका करने वाले क्षत्रिय कहलाए। स्याही से शुद्ध और सुन्दर ग्रन्थादि लेखन क्रिया कर मसि (स्याही) कर्म द्वारा या कृषि (खेती) कर्म द्वारा या वाणिज्य (व्यापार) द्वारा या पशु पालन द्वारा

आजीविका करने वाले आर्य्य उग्र ऊरज या वणिक और पश्चात् वश्य नाम से प्रसिद्ध हुए। नृत्य गानादि विद्या या कला सिखाने द्वारा अथवा शिल्प (दस्तकारी) द्वारा आजीविका करने वाले अथवा जो क्षत्रिय और वणिकों की किसी न किसी प्रकार की सेवा सुश्रूषा कर अपनी आजीविका करते थे वे जघन्यज, अवर वपल और बाद मे शूद्र कहलाये। इस प्रकार भिन्न भिन्न कर्मों के आधार पर भगवान् ने वर्ण व्यवस्था कायम की।

आद्य शासक ऋषभदेव

कुछ काल पश्चात् षट्कर्मों की प्रवृत्ति से जब प्रजा की स्थिति सुधर गई और सब लोग शान्ति से रहने लगे, तब एक दिन शुभ मुहूर्त मे बड़े समारोह के साथ भगवान् का राज्याभिषेक किया गया इस समय इनके पिता श्री नाभिराय ने सब उपस्थित मण्डली के सम्मुख अपने मस्तक का मुकुट भगवान् के मस्तक पर रखते हुए यह कहा कि आज से समस्त मुकुट-बद्ध राजाओं आदि के पालन करने वाले भगवान् ऋषभदेव हैं, मैं नहीं हूँ।

अपने पिता श्री नाभिराय से राज्य पाकर आदि ब्रह्मा श्री ऋषभदेव ने तीनों वर्णों के लिए अपनी मर्यादा को सुदृढता से पालने के लिए ऐसे नियम बनाए जिससे सब कार्य भली प्रकार सुव्यवस्थित रूप से चलने रहें। इसी समय भगवान् ने हरि, अकम्पन काश्यप और सोमप्रभ नाम के चार बड़े क्षत्रियों को बुलाकर उनको "महाराज" पद दिया और उनके आधीन एक सहस्र राजा नियत किए।

वंश और उपवंशों की स्थापना

हरि ने अपना नाम हरिकान्त रखा और हरिवंश का मूल

नायक कहलाया। अकम्पन से नाथवंश, काश्यप से उग्रवंश और सोमप्रभ से कुरुवंश की स्थापना हुई। जिस समय कल्पवृक्ष नष्ट हुए थे उस समय भगवान् ने मनुष्यों को प्रथम ही 'इक्षुरस' ग्रहण करने का उपदेश दिया था। अतः लोग उन्हें 'इक्ष्वाकु' कहने लगे और उनका वंश 'इक्ष्वाकु' वंश कहलाया। पश्चात् इक्ष्वाकु वंश की दो शाखाएँ सूर्यवंश और चन्द्रवंश के नाम से प्रसिद्ध हुईं। श्री ऋषभदेव के पुत्र भरत चक्रवर्ति के ज्येष्ठ पुत्र अर्ककीर्ति के नाम पर सूर्यवंश और बाहुबलि के ज्येष्ठ पुत्र सोमकीर्ति के नाम पर चन्द्रवंश कहलाया।

भगवान् का तप कल्याण

भगवान् ऋषभदेव जब लगभग २० लाख पूर्व वर्ष कुमार अवस्था में और ६३ लाख पूर्व वर्ष राज्य भोग में अर्थात् कुल ४४४५ लाख २८ पद्म वर्ष व्यतीत कर चुके और लगभग १ लाख वर्ष की आयु जब शेष रह गई तब एक दिन पूर्ण राज्य विभूति संयुक्त राजसभा में आप रत्न जडित सिंहासन पर विराजमान थे। उस समय नीलांजना नाम की एक अप्सरा वहाँ नृत्य कर रही थी, वह सबके देखते-देखते ही मृत्यु को प्राप्त हो गई। भगवान् अप्सरा के समान ही जगत की माया तथा राज्य वैभव आदि को क्षणभंगुर विचारते हुए तुरन्त ही भोगों से विरक्त हो गये। उसी समय अपने नियोगानुसार 'तप कल्याणक' की पूजा के लिये लौकान्तिक देव आए और भगवान् की बहुत-बहुत प्रकार से स्तुति कर तथा उनको पूर्ण रूप से दृढ़ता के साथ तपश्चरण ग्रहण करने के सम्मुख कर अपने स्थान को लौट गए। तत्पश्चात् इन्द्र आदि और सब देव आए, उन्होंने तप कल्याणक उत्सव किया। क्षीर सागर से पवित्र जल लाकर भगवान् का अभिषेक किया और उनको वस्त्राभूषण पहराए।

उस समय भगवान् ने अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को सम्राट पद और बाहुबलि को युवराज पद दिया तथा दूसरे पुत्रों को भी अपनी सम्पत्ति का यथायोग्य बटवारा कर दिया। तब आपने अपने पिता नाभिराय तथा माता मरुदेवी आदि कुटुम्बीजनों से पूछकर चैत्र कृष्णा ९ को नग्न दिगम्बरी दीक्षा धारण करली। आपके साथ-साथ आपके सवन चार हजार अन्य राजाओं ने भी बिना समझे केवल उनके अनुकरण रूप मुनि दीक्षा धारण की। ध्यान लगाते ही विशुद्ध परिणामों के कारण भगवान् को मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया।

पुण्य मय अक्षय तृतीया

श्री ऋषभदेव ६ मास की प्रतिज्ञा करके ध्यान में बैठे थे। किसी के आहार विधि न जानने तथा भगवान् का अभिप्राय न समझ सकने के कारण उनको और ६ माह से अधिक तक आहार न मिला एवं दिन यह महान् तपस्वी विहार करते हुए हस्तिनापुर पहुंचे। वहाँ के राजा सोमप्रभ के छोटे भाई श्रेयांस को भगवान् के दर्शन करते ही जाति स्मरण हो जाने से मुनियों को नवधाभक्ति पूर्वक शुद्ध आहार देने की विधि स्मरण हो आई। अत श्रेयांस ने भगवान् को निरंतराय इक्षुरस का शुद्ध तथा विधिपूर्वक आहार कराया। तपश्चरण करने के ठीक १३ मास ९ दिन पश्चात् शुभ मिति वैशाख शुक्ल ३ को आहार हुआ। उसी दिन से वैशाख सुदी ३ 'अक्षय तृतीया अथवा अखय तीज' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

हजार वर्ष का घोर तप

निरन्तराय आहार हो जाने के पश्चात् भगवान् फिर वन में जाकर तप करने लगे। वे साधु के २८ मूल गुण तथा ८४ लाख उत्तर गुणों को बड़े प्रयत्न से पालते थे। इस प्रकार घोर

तपश्चरण करते हुए तथा अनेक देशों में विहार करते हुए एक दिन आप पुरिमताल नगर के पास शकट नाम के उद्यान में पहुँचे और वहाँ वट वृक्ष के नीचे एक स्वच्छ शिला पर पद्मासन जमाकर ध्यानारूढ हो गये। अब आप क्षायिक श्रेणी में गुण श्रेणी निर्जरा करते हुए अतिशय विशुद्ध परिणामों द्वारा घातिया कर्मों की ४७ तथा नाम कर्म की १३ और आयुकर्म की तीन, कुल ६३ प्रकृतियों का क्षय कर १३ वें गुणस्थान में जा पहुँचे। अब उनकी निर्मल आत्मा में लोकालोक की तथा तीनों काला के त्रलोक्यवर्ती सर्वद्रव्यों की अनन्तानन्त पर्यायों को युगपत् प्रकाशित करने वाले केवल ज्ञान का प्रादुर्भाव शुभ मिति फाल्गुन कृष्णा ११ का हो गया। आपने कुल २८ दिन कम १००० वर्ष पर्यन्त तप किया।

कल्याणमयी अर्हन्तावस्था

भगवान् को अर्हन्त पद प्राप्त होते ही बिना तार की विद्युत लहरों के समान प्राकृतिक रीति से जगत भर में निमिष मात्र के लिए एक आनन्द की लहर व्याप्त हो गई। उस समय के समान इस समय भी सब देवों को भगवान् के कैवल्य पद पाने की सूचना मिल गई। उसी समय सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से १२ योजन के व्यास का एक वर्त्ताकार अत्यन्त सुन्दर सभा मण्डप रचा गया। इसी सभा मण्डप का नाम 'समवसरण' है, क्योंकि यहाँ पर सब मनुष्य, तिर्यंच सब कोई समान रूप से आ आ कर भगवान् के दर्शन पूजन स्तुति करने और सत्यार्थ मोक्षमार्ग प्रकाशक धर्मोपदेश सुनने का सब समान रूप से अवसर-अवसर प्राप्त करते थे।

समवसरण में सभी देव, मनुष्य, तिर्यंच आदि आकर भगवान् को नमस्कार करके अपने अपने कोठों में यथास्थान बैठते जाते थे।

भगवान् की दिव्यध्वनि द्वारा प्रतिदिन चार बार धर्मोपदेश होता था, जिसको सुनकर अनेकों जीव धर्म मार्ग पर लगकर अपने जीवन को सफल बनाते थे। इस अर्हन्त अवस्था में आपने समस्त आर्यक्षेत्र में विहार करके असंख्यात जीवों का १०० वर्ष-४१ दिन कम १ लाख पूर्व वर्ष पर्यन्त कल्याण किया।

भगवान् की अनक्षरी दिव्य वाणी को श्री वृषभसेन गणधर देव ने अपने पवित्र स्वच्छ और दिव्य ज्ञान बल से द्वादश अंग और १४ प्रकीर्णकों में विभाजित करके अक्षर बद्ध कर दिया जिससे अनन्तानन्त भव्य प्राणी केवली भगवान् की अनुपस्थिति में भी मदद लाभ उठाते और आत्म कल्याण करते रहते हैं।

श्री ऋषभदेव का मोक्ष कल्याण

केवलज्ञान प्राप्त होने के समय से पौष शुक्ला १५ तक उपदेश दे देकर आप जीवों को निरंतर सद्मार्ग पर लगाते रहे। तत्पश्चात् समवशरण की रचना विघट गई और वाणी का खिरना रुक गया तब भगवान् ऋषभदेव ने कैलाश पर्वत पर योग निरोध प्रारम्भ कर दिया। चौदहवें दिन माघ कृष्ण १४ के शुभ मुहूर्त में पूर्व मुख पद्मासन लगाए हुए भगवान् ने सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति नाम के शुक्ल ध्यान से मन, वचन, काय इन तीन योगों का पूर्ण निरोध करके अयोग केवलि नाम का १४ वाँ गुणस्थान प्राप्त किया।

जितने समय में अ, इ, उ, ऋ, लृ इन पांच लघु स्वरों का उच्चारण होता है उतनी देर के अन्तमुहूर्त काल में व्युपरत क्रिया निवृत्ति नाम शुक्ल ध्यान से अन्तिम समय से पूर्व के समय में अघातिया कर्मों की शेष ८५ प्रकृतियों में से ७२ को और अन्तिम समय में शेष १३ प्रकृतियों को नष्ट करके श्री ऋषभदेव —

समय मात्र काल में सिद्धालय में जा विराजे और इस निर्वाणपद प्राप्त करके क्षायिक १—सम्यक्त्व २—अनन्त ज्ञान ३—अनन्त दर्शन ४—अनन्त वीर्य ५—सूक्ष्मत्व ६—अवगाहनत्व ७—अगुरुलघुत्व ८—अव्याबाधत्व । इन अष्ट मुख्य तथा अनन्तानन्त उत्तम गुणयुक्त नित्य निरंजन ज्योति स्वरूप हो गये। उसी समय इन्द्रादिक देवों ने आकर भगवान् का निर्वाण महोत्सव विधिपूर्वक बड़े समारोह के साथ मनाया।

प्रश्नावली

१—भगवान् ऋषभदेव का जन्म कब हुआ ?

२—भगवान् ऋषभदेव के माता पिता के बारे में आप क्या जानते हैं ?

३—भगवान् का जन्माभिषेक महोत्सव किसने कहाँ और कैसे मनाया ।

४—भगवान् के गार्हस्थ्य जीवन के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं ?

५—भगवान् के कितने पुत्र-पुत्रियाँ हुई और उन्हें भगवान् ने किस प्रकार की शिक्षा प्रदान की ?

६—भगवान् ने वर्ण स्थापना कैसे की और वर्णों की उत्पत्ति कैसे हुई ?

७—भगवान् का दीक्षा कल्याणक कब और कैसे हुआ, अक्षय तृतीया कैसे प्रसिद्ध हुई ?

८—भगवान् ने कितने दिन तपस्या की, केवलज्ञान कब हुआ ?

९—भगवान् की अर्हतावस्था का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए ?

१०—भगवान् का निर्वाण कब हुआ ?

— o —

शाह भी घबराया परन्तु अपनी वीर माता के प्रोत्साहन पर उसने उदयसिंह का पता की गोद मे उठा लिया और प्रण किया कि अपनी जान पर खेल कर भी उदयसिंह की रक्षा तथा पालन पोषण करूँगा। यही हुआ उदयसिंह कुम्भलमेर के दुर्ग में ही आशाशाह के घराने में पलकर बड़ा हुआ और अन्त में बनवीर को मार कर अपना राज्य सम्भाला।

महाराणा उदयसिंह ने भारमल जी को अपने राज्य का प्रधान बनाया। भारमलजी ने अपने आयुकाल में मेवाड राज्य का समस्त कारबार बड़ी चतुराई एवं सफलता पूर्वक चलाया। इनके दो पुत्र हुए भामाशाह और ताराचन्द। उदयसिंह के बाद महाराणा प्रतापसिंह ने राजगद्दी को सुशोभित किया और इन्होंने भामाशाह को अपना प्रधान मन्त्री बनाया। भामाशाह और इनके भाई ताराचन्द दोनो ही बड़े नीति निपुण, शूरवीर योद्धा और परम राजभक्त थे। हल्दी घाटी की खूनी लड़ाई में दोनो भाइयो ने मेवाड के झण्डे के नीचे मुगल सेनाओ से घोर युद्ध किया इसमे ताराचन्द घायल हो गया परन्तु इस युद्ध के समाप्त होने पर दोनो भाई युद्ध स्थल से चले और कुम्भलमेर पहुँच कर एक राजपूती सेना एकत्रित करके मालवे देश पर चढ़ाई कर दी और वहा के यवन सूबेदार से पच्चीस लाख रुपया और बीस हजार सोने की अशर्फियां दण्ड स्वरूप वसूल की।

इसके कुछ समय बाद जब भामाशाह को यह खबर मिली कि महाराणा प्रताप यवनो की टिड्डीदल फौज से बेबस होकर मेवाड छोड़ कर सिन्ध की ओर रेगिस्तान में जा पहुँचा है तो उसे अत्यन्त खेद हुआ और जब भामाशाह से न रहा गया तो वह घोड़े पर सवार होकर महाराणा की खोज में चल पड़ा। इतिहास बतलाता है जब भामाशाह की महाराणा से भेंट हुई तो दोनो की आखो मे से प्रेम तथा खेद के आँसू बह निकले।

पधारे तो महाराणा संग्रामसिंह ने एक बड़ी सभा बुलाकर उनका स्वागत किया और हार्दिक सन्ताप प्रकट किया।

तोलाशाह का पुत्र कर्माशाह भी बड़ा बलवान् और पराक्रमी पुरुष था। इसे महाराणा रत्नसिंह ने मेवाड़ राज का प्रधान बनाया। राज्य का समस्त कारबार कर्माशाह ने वर्षों तक बड़ी चतुराई और बुद्धिमत्ता पूर्वक चलाया और अपने आयु काल में ही करोड़ों रुपयों की लागत से गुजरात देश में शत्रुञ्जय जी के प्रसिद्ध जैन मन्दिरों का पुनरुद्धार कराया।

पन्ना का नाम किसने नहीं सुना होगा। राज्य का मालिक उदयसिंह अभी बच्चा ही था। पन्ना की देख रेख में पलता था। राज्य का कारबार बनवीर चलाता था जो कि एक दासी का पुत्र था। बनवीर को यह धुन सवार हुई कि उदयसिंह को जान से मार कर अटल राज्य करे। एक दिन पन्ना महल में उदयसिंह के पालने के पास बैठी थी, कि इतने में नाई घबराता हुआ आया और सूचित किया कि बनवीर नंगी तलवार लिए महल में आ गया है। पन्ना समझ गई और उदयसिंह को जो सो रहा था नाई को देकर महल से बाहर भेज दिया और अपने बच्चे को उदयसिंह के कपड़े पहना कर उसे पालने में सुला दिया। बनवीर ने आते ही पालने में सोते हुए बालक को तलवार से मार डाला। बनवीर के महल से वापिस जाते ही पन्ना भी महल से निकली और उदयसिंह को नाई से अपनी गोद में लेकर उसकी रक्षा के प्रबन्ध के लिए चल पड़ी। वह उदयसिंह को लेकर मेवाड़ के बड़े से बड़े सरदारों के पास पहुँची और प्रार्थना की कि उदयसिंह को अपनी शरण में ले लें परन्तु बनवीर के भय से एक भी इसके लिए तय्यार नहीं हुआ। अन्त में पन्ना निराश होकर कुम्भलमेर के जैन गवर्नर आशाशाह के पास पहुँची और उनसे भी यही विनती की। पहले तो आशा

यवनों से दांत खट्टे किए और राजस्थान की स्वतन्त्रता को बचाया। इस स्वतन्त्रता संग्राम में भी दयालदास ने पूरा-पूरा भाग लिया। औरंगजेब के अत्याचारों से क्रुद्ध होकर उनके शरीर में क्रोध की ज्वाला भड़क गई और उन्होंने यवनों से भारी बदला लेने का दृढ़ संकल्प कर लिया और तलवार म्यान से बाहर निकाली। कर्नल टाड लिखते हैं कि सिंघवी दयालदास ने सिसोदिया सेना का नेतृत्व करते ही समर में यवनों पर कई तरफ से घोर आक्रमण किया और सारंगपुर, देवास, सरोज, मांडू और धार आदि को जीत लिया। यवनों की असंख्य सेना को इन इलाकों में मार डाला और कई कुएँ भरकर बना दिए। टाड साहब लिखते हैं—कि यवनों को इतना भय व्याप्त हुआ और उनमें इतनी घबराहट मची कि उन्हें अपने बीबी बच्चों की भी मोहब्बत न रही और उस जगह जगह छोड़कर भाग गए। इन देशों को लूट कर जो धन संचित हुआ वह सब महाराणा राजसिंह के पास में भेज दिया गया।

दयालदास राजकुमार जयसिंह के साथ एक दिन जब चित्तौड़ के पास था उस समय और शाहजादा अजीम की सेना से सामना किया। इस युद्ध में राजपूत इस वीरता से लड़े कि मुगल सेना फिर दुम दबा कर भागी। हजारों भागते हुए मुगलों को काट डाला गया। अजीम मुश्किल से अपनी जान बचा कर भागा और औरंगजेब के सारे विचार धरे के धरे रह गए। इस स्वतन्त्रता युद्ध में सिंघवी दयालदास ने जो अपूर्व देशभक्ति दिखलाई, वह इतिहास में सदा के लिए अमर रहेगी। महाराणा राजसिंह के बाद उनके उत्तराधिकारी भी उनको राज्य के बड़े से बड़े पदों पर नियुक्त करते रहे। इनमें नायकों के वंशज मेवाड़ के बड़े प्रसिद्ध सरदार हुए हैं। इस वंश के पूर्वज सोलंकी राजपूत थे जिन्होंने बारहवीं शताब्दी में जैनधर्म ग्रहण कर लिया था।

भामाशाह ने अपने समस्त कोष की कुञ्जियाँ महाराणा के चरणों मे अर्पण कर दी और मेवाड के पुनरुद्धार के लिए इतनी दर्द भरी विनती की कि महाराणा तैयार हो गया और भामाशाह के विशाल कोष की सहायता से चित्तौड तथा माडलगढ के सिवाय समस्त मेवाड को मुगलों से जीत लिया और यवन सेनाओ को मारकर देश से बाहर खदेड दिया। वीर भामाशाह का देहान्त सम्वत् १६८६ मे हुआ। इनके बाद इनकी चार पीढी तक मेवाड का प्रधान पद भामाशाह के वंश मे रहा।

मेवाड के महाराणा राजसिंह औरंगजेब के समकालीन थे। इन्होंने सिंघवी दयालदास को मेवाड राज का प्रधान बनाया। सिंघवी जी के पूर्वज ओसवाल क्षत्रिय थे जिन्होंने जैनधर्म ग्रहण किया था। दयालदासजी को राज्य का यह महान् पद अपनी अपूर्व राज्य भक्ति के कारण मिला। महाराणा की एक छोटी रानी ने अपने ब्राह्मण पुरोहित के हाथों महाराणा को विष दे कर मरवाना चाहा, इस प्रपंच का ज्ञान दयालदास को होने से उन्हें बहुत दुःख और चिन्ता हुई कि अगर यह प्रपंच सफल हो गया तो इतने बडे राजनीतिज्ञ और शूरवीर महाराणा की जान जाती रहेगी, इसलिए उन्होंने अपनी जान जोखो मे डाल कर महाराजा को खबर देदी इसलिए महाराणा ने तुरन्त रानी और पुरोहित दोनों को प्राण दान दिया और दयालदास की स्वामिभक्ति से प्रसन्न हो उनको अपना अंगरक्षक बनाया और उनके पराक्रम वीरता तथा राजनीति से प्रसन्न होकर उन्हें राज्य का प्रधान बनाया।

राजस्थान के लिए यह बडे संकट का युग था। औरंगजेब ने राजस्थान पर अपनी टिड्डीदल सेनाओं को लेकर चढाई की और राजपूतों को मुसलमान बनाने का निश्चय किया, इस संकट से बचने के लिए मेवाड तथा मारवाड के सिसोदिया और राठौरों

यवनों से दान लड़े किए और राजस्थान की स्वतन्त्रता को बचाया। इस स्वतन्त्रता संग्राम में भी दयालदास ने पूरा पूरा भाग लिया। औरंगजेब के अत्याचारों की खबर पाकर उसके शरीर में क्रोध की ज्वाला भड़क गई और उसने यवनों से भारी बदला लेने का दृढ़ संकल्प कर लिया और तलवार म्यान से बाहर निकाली। कर्नल टाड लिखते हैं कि सिंघवी दयालदास ने मिलादिया सेना को लेकर एक ही समय में यवनों पर कई तरफ से धार आक्रमण किया और सारंगपुर देवास सरोज, माण्डू और चन्देरी को जीत लिया। यवनों की अनगिनत सेना को इन स्थानों में मार डाला और बचे खुचे मारकर भगा दिए। टाड साहब लिखते हैं—कि यवनों को इतना भय सवार हुआ और उनमें इतनी भगदड़ मची कि उन्हें अपने बीबी बच्चों की भी मोहब्बत न रही और उन्हें जगह जगह छोड़कर भाग गए। इन देशों को लूट कर जो धन एकत्रित हुआ वह सब महाराणा राजसिंह के कोष में भेज दिया गया।

दयालदास राजकुमार जयसिंह के साथ घूम फिर कर चित्तौड़ के पास जा धमके और शाहजादा अजाम की सेना से लोहा लिया। इस युद्ध में राजपूत इस वीरता से लड़े कि मुगल सेना फिर दुम दबा कर भागी। हजारों भागते हुए मुग़लों को काट डाला गया। अजीम मुश्किल से अपनी जान बचा कर भागा और औरंगजेब के पापी विचार धर के धरे रह गए। इस स्वतन्त्रता युद्ध में सिंघवी दयालदास ने जो अपूर्व देशभक्ति दिखलाई वह इतिहास में सदा के लिए अमर रहेगी। महाराणा राजसिंह के बाद उनके उत्तराधिकारी भी जैनों को राज्य के बड़े से बड़े पदों पर नियुक्त करते रहे। इनमें नाथजी के वंशज मेवाड़ के बड़े प्रसिद्ध सरदार हुए हैं। इस वंश के पूर्वज सोलंकी राजपूत थे जिन्होंने बारहवीं शताब्दी में जैनधर्म ग्रहण कर लिया था।

मारवाड

लगभग ७०० वर्ष हुए मारवाड के राठौर राजकुमार माहद जी ने एक जैन ऋषि के उपदेश से प्रभावित होकर जैनधर्म ग्रहण किया। उनके वंशज मेहता महाराजजी सम्वत् १५१५ में राव जोधाजी के साथ मण्डौर से जोधपुर आए और उनके प्रधान रहे। मेहता वंश के बहुत से सरदार जोधपुर और किशनगढ के प्रधान बनते रहे जो कि अपनी चतुर राजनीति और राजभक्ति के कारण बड़े प्रसिद्ध हुए हैं, उनमें से मेहता रामचन्दजी किशनगढ के महाराजा मानसिंह के प्रधान थे। इनको राज्य की सेवाओं के उपलक्ष्य में भारी जागीर मिली। किशनगढ का जैन मंदिर भी इन्हीं मेहता रामचन्दजी का बनाया हुआ है। जब सम्वत् १७८६ में नवाब अब्दुल्लाखाँ ने बादशाही सेना लेकर किशनगढ पर चढ़ाई की तो मेहता रामचन्द के वंशज मेहता कृष्णदास ने जो राज्य के प्रधान थे, नवाब से युद्ध करके उसे बुरी तरह पराजित किया और सेना को मार भगाया।

जोधपुर के भण्डारियों का अजमेर के चौहान राजघराने का निकास है। इन्होंने भी जैनधर्म में प्रवेश कर लिया था। यह राव जोधा जी के साथ ही आकर जोधपुर में बसे थे। इन्होंने समय-समय पर मारवाड देश की भारी सेवाएँ की, इनमें से बहुत से सरदार अपनी राजनीतिज्ञता और वीरता के कारण प्रधान और सेनापति के पदों पर नियुक्त रहे। इनमें अनपसिंह भण्डारी और रत्नसिंह भण्डारी के नाम अधिक प्रसिद्ध हैं।

मारवाड के इतिहास में सिंघवी इन्द्रराज ने भी बड़ा मान पाया है। यह चौहान वंश के एक शूरवीर जैन योद्धा थे। महाराजा मानसिंह और इनसे पहले दो महाराजाओं के समय में इन्होंने मारवाड के प्रधान पद को सुशोभित किया। इन्होंने कई युद्धों में

सेनापति बनकर बड़ी सफलता से भाग लिया और मरते दम तक मारवाड़ देश की अपूर्व सेवाएं की। यह पिण्डारों की लूट खसोट का काल था जिनमें से अमीरखाँ पिण्डारा मध्यभारत में लूट खसोट करते करते जोर पकड़ गया और नवाब बन बैठा था। इसने अपनी कूटनीति से राजस्थान के राजाओं में फूट के बीज बुरी तरह बोकर उन्हें आपस में लड़ाने का प्रपंच रचा। सिंघवी इन्द्रराज इस नवाब की कूटनीति को अच्छी तरह समझता था और कई लड़ाइयों में उसके दांत खट्टे किए थे। अन्त में जब अमीरखाँ को यह निश्चय होगया कि सिंघवी इन्द्रराज अपने जीते जी मारवाड़ राज्य को कोई हानि न पहुंचने देगा तो सम्वत् १८७३ में उसने धोखे से सिंघवी जी को बुला भेजा। जोधपुर नरेश महाराजा मानसिंह को इस दुर्घटना से इतना असीम दुःख हुआ कि वह संसार छोड़कर विरक्त होगए।

बीकानेर

राजस्थान के इतिहास में यह एक अद्भुत बात है कि बीकानेर राज्य की स्थापना में भी एक जैन नररत्न का पूरा-पूरा हाथ था। राव जोधा जी के सुपुत्र बीकाजी ने सन् १४८८ में अपने लिए एक पृथक् राज्य स्थापित करने का निश्चय किया। उस समय उनका मन्त्री सरदार बच्छराज था। बच्छावत राजपूतों ने १४ वीं शताब्दी में जैन आचार्य श्री जिनेश्वर सूरि के पावन उपदेश से जैनधर्म में प्रवेश किया था। राव बीकाजी ने अपने भक्त बच्छराज के प्रबन्ध से जब बीकानेर की स्थापना की तो बच्छराज को राज्य का प्रधान पद दिया, जिसे बच्छराज ने बड़ी सफलता से निभाया और महाराज को सन्तुष्ट किया। राव बीकाजी के उत्तराधिकारी भी बच्छराज के वंशजों को बीकानेर राज्य का - १ रहे और इस उच्च पद को यह बच्छावत

सरदार अपनी चतुर राजनीति और युद्ध कुशलता से सुशोभित करते रहे। बच्छावत वंश का अन्तिम महापुरुष सरदार करम चन्द था, जिसे बीकानेर के महाराजा रायसिंह ने अपना दीवान बनाया। कमचन्द मुगल सम्राट अकबर के समकालीन थे। जब इनकी महाराजा से अनबन हो गई तो यह अकबर के दरबार में देहली पधारे। अकबर ने करमचन्दजी का बड़ा आदर तथा सम्मान किया और उनके धर्म-प्रेम और विद्वत्ता से इतना प्रभावित हुआ कि उनकी नजरों में जैनधर्म का स्थान बहुत ऊँचा हो गया। यहां तक कि जब सम्राट् को जैन मुनि हीर विजय सूरि के आगमन की सूचना मिली तो सम्राट् ने अपने दरबारियों सहित बड़ी नम्रता पूर्वक स्वागत किया और मुनि महाराज का धर्मोपदेश सुना। करमचन्दजी का देहान्त भी देहली में ही हुआ।

राजस्थान के अन्य राज्यों में भी अनेकों जैन सरदारों ने उसी तरह के महान् उपयोगी कार्य किए और देश के राजपूत शासकों के दिलों पर अपनी अगाध देशभक्ति, चतुर राजनीति और अनुपम वीरता की धाक बैठाई। यद्यपि राजस्थान के समस्त राज्यों की विभिन्न सत्ता सन् १९४८ में समाप्त होकर राजस्थान को एक विशाल देश बना दिया गया है, फिर भी इन प्राचीन जैन सरदारों के वंश राजस्थान में विद्यमान हैं और इनकी कीर्ति अमर है।

प्रश्नावली

१—निम्न व्यक्तियों के विषय में संक्षिप्त नोट लिखिए—
महाराणा संग्रामसिंह, तोलाशाह, कर्माशाह,

२—पन्ना ने उदयसिंह के प्राणों की किस प्रकार रक्षा की और उसके पालन पोषण का क्या क्या प्रबन्ध किया?

३—भामाशाह भामाशाह और राणा प्रताप के सम्बन्ध मे जो कुछ भी आपको मालूम हो, सुनाइए।

४—महाराणा राजसिंह और दयालदास के सम्बन्ध मे आप क्या जानते हैं? दयालदासजी की वीरता के कारनामे अपने शब्दो मे सुनाइये।

५—राजकुमार मोहनजी मेहता रामचन्द्र और सिंघवी इन्द्रराज के सम्बन्ध मे जो कुछ आप जानते हैं सुनाइए।

६—बीकानेर राज्य की स्थापना मे किस जैन वीर ने क्या सहायता दी? कर्मचन्द कौन थे और क्या प्रसिद्ध हुए?

७—'राजस्थान और जैन सरदार' इस विषय पर एक निबन्ध लिखिए।

— ० —

गुरु महिमा

* भजन *

कत्रधा मित्र माहिं श्री गुरु मुनिवर
करहिं भवदधि पारा हो ॥ कत्रधा० ॥टेक॥

(१)

भोग उदारा जोग जिन लीना
छांडि परिग्रह भारा हो।
इन्द्रिय दमन वमन मद कीनो,
विषय कषाय निवारा हो ॥कत्रधा०॥

(२)

कंचन कांच बराबर जिनके,
निंदक वंदक सारा हो।
दुर्धर तप तपि सम्यक निज घर,
मन वच तन कर धारा हो ॥कत्रधा०॥

(३)

ग्रीष्म गिरि हिम सरिता नीर,
पावस तरु तर ठारा हो।
करुणा भीन चीन त्रस थावर,
ईर्या पथ सम्भारा हो ॥कत्रधा०॥

(४)

मार मार व्रत धार शील दृढ़,
मोह महा मल टारा हो।

मास छह मास उपास वास वन,
प्रासुक करत अहारा हो ।।क्वधा०।।

(५)

आरत रौद्र लेश नहिं जिनके
धर्म शुक्ल चित धारा हो।
ध्यानारूढ़ गूढ़ निज आतम,
शुद्ध उपयोग विचारा हो ।।क्वधो०।।

(६)

आप तरहिं औरन को तारहिं,
भव जल सिंधु अपारा हो।
"दौलत' ऐसे जन जतिन को
नित प्रति धोक हमारा हो ।।क्वधा०।।

प्रश्नावली

१—इस कविता के रचयिता कौन हैं ?

२—इस कविता मे कवि ने किन गुरु को नमस्कार किया है ?

३—सच्चे गुरु के जो गुण कवि ने अपनी इस कविता मे वर्णन किये हैं वे अपने शब्दो मे सुनाइये ?

४—चौथे और पाँचवें छन्द का अर्थ समझाइये ?

अपरिग्रह

आज समस्त ससार मे हाहाकार मचा हुआ है। भाई भाई का रक्त चूसना चाहता है। पहले जैसा प्रेम भाव नही रह गया है। प्रत्येक व्यक्ति दूसरे का जीवन तक नष्ट करने मे कोई हिचकिचाहट अनुभव नही करता। मानव-समाज की मनोवृत्ति आज दूषित होगई है इसका कारण है प्रत्यक मनुष्य तृष्णा रूपी रोग से पीडित है। तृष्णा रूपी गढ़े मे वह इतना डूब गया है, उसका ऊपर आना ही कठिन हो गया है। प्रत्येक मनुष्य सम्पूर्ण विश्व का धन सग्रह करना चाहता है और दूसरे को उसमे से कुछ भी देना नही चाहता। इसी दूषित मनोवृत्ति के कारण बहुत से पापो का सूत्रपात हुआ। एक भाई मृत पिता की पूरी सम्पत्ति लेने के लिए दूसरे भाई की हत्या तक करने मे सकोच नही करता। पति पत्नी का और पत्नी पति का अन्त तक कर देने मे कोई विचार नही करते। इस घोर अत्याचार का कारण हमारी आवश्यकताओ का असीमित होजाना है। असीमित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपरिमित धन धान्य की आवश्यकता पडती है। समस्त विश्व का धन भी यदि एक व्यक्ति के पास आजाता है, तब भी वह सतुष्ट नही हो पाता।

आदर्श समाज वह है जिसके सदस्यो मे उपलब्ध सम्पत्ति समान रूप से वितरित हो, न किसी के पास अधिक हो न कम। प्रत्येक की साधारण आवश्यकताओ की पूर्ति होती रहे परन्तु यह बात तभी सम्भव है, जब कोई भी व्यक्ति अपनी साधारण

 की पूर्ति से अधिक परिग्रह न रखे। समाज मे

सुखद वातावरण उत्पन्न करने का राजमार्ग केवल अपरिग्रह है। अपरिग्रह का नाम ग्रन्थों में महापुरुषों के उपदेशों में ही मिलता है, जीवन में इसे व्यावहारिक रूप देने वाले विरले ही दिखलाई पडते हैं। आज बडे बडे धर्मोपदेश नेतागण विद्वान् अपरिग्रह का संसार को उपदेश देते हैं पर स्वयं जीवन में आचरण नहीं कर पाते यही कारण है संसार में चहुँ ओर दुःख ही दुःख दिखलाई देता है। मानव द्वारा स्वयं आविष्कृत विषमता जनित परिग्रह ही सकट मूलक है और अपरिग्रह ही हमारे सम्पूर्ण संकटों की एकमात्र रामबाण औषधि है।

जितने से अपने परिणामों में सन्तोष आजावे उतना धन धान्य दासी दास सवारी, गृह क्षेत्र आदि परिग्रह का परिमाण करके उससे अधिक में वांछा का न करना परिग्रह परिमाण अणुव्रत है।

परिग्रह का अर्थ है ग्रहण करना, अपरिग्रह का अर्थ है ग्रहण न करना। 'भगवान् ने मूर्च्छा को परिग्रह कहा है'। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि समस्त इन्द्रिय गम्य पदार्थों में अनासक्ति अपरिग्रह है। अपने इन्द्रिय सुख के लिये आवश्यकता से अधिक पदार्थों का संग्रह करना सामाजिक कलह और संघर्ष का कारण है। अनियन्त्रित संचय और पूंजीवाद परिग्रह के परिणाम हैं। अल्प संग्रह और अल्प व्यय से ही समाज में आर्थिक समता और सुख शान्ति स्थापित हो सकती है। परिग्रह समस्त पापों का मूल कारण है। व्यक्तिगत और सामाजिक कल्याण के लिये इस महापाप से बचना आवश्यक है और इसका उपाय है परिग्रह की प्रवृत्ति का त्याग।

'सांसारिक सुखों का स्वेच्छा से त्याग, वासनाओं से विरक्ति आडम्बरों से निर्लिप्त तथा वस्तुओं के संग्रह का मोह त्याग यही अपरिग्रह के लक्षण हैं। अपरिग्रह का मन्तव्य समझाते हुए

नीतिकारों ने कहा है कि मनुष्य को अपनी भौतिक सम्पत्ति से मोह नहीं रखना चाहिये तथा प्रलोभनों से सदा बचना चाहिये। वह अपने जीवन की आवश्यकता पूर्ति के लिये सम्पत्ति तथा वस्तुएं रख सकता है, परन्तु उसे अर्थ प्राप्ति में अपने को भुला नहीं देना चाहिये। उसे राग द्वेष क्रोध, मान, माया, लोभ, शोक भय जुगुप्सा आदि का त्याग करना चाहिये।"

ऊपर बताया है कि मूर्छा परिग्रह है, बहिरंग में वस्त्रमात्र तथा रहने का फूस की झोपड़ी मात्र भी न होते हुए, यदि अन्तरंग में जरा भी ममत्व भाव अर्थात् वाञ्छा बनी हुई है तो भी परिग्रह ही कहलाता है।

परिग्रह के दो भेद हैं—एक अंतरंग परिग्रह और एक बहिरंग परिग्रह—

अंतरंग परिग्रह **चौदह** प्रकार का होता है—

(१) मिथ्यात्व (२) वेद (३) राग (४) द्वेष (५) क्रोध (६) मान (७) माया (८) लोभ (९) हास्य (१०) रति (११) अरति (१२) शोक (१३) भय (१४) जुगुप्सा।

बहिरंग परिग्रह दस प्रकार का होता है—क्षेत्र, वास्तु, हिरण्य, सुवर्ण धन, धान्य, दासी दास, कुप्य और भांड। इस तरह अन्तरंग और बहिरंग परिग्रह मिलाकर कुल २४ प्रकार का परिग्रह होता है। जिसके अन्तरंग के परिग्रह मिथ्यात्व कषायादि का अभाव हो जाता है, उसके बाह्य परिग्रह में ममता नहीं होती।

जगत् में समस्त अनीति तथा विषमता का कारण परिग्रह है। परिग्रह से मनुष्य, समाज तथा राष्ट्र का पतन हो जाता है। परिग्रह की वाञ्छा से ही प्रेरित होकर मनुष्य हिंसा करता है, झूठ बोलता है, मायाचारी करता है, चोरी करता है, कुशील सेवन करता है। परिग्रह के कारण ही आप अपने प्राणों का त्याग कर

देता है, दूसर को घार हत्या करत हुए जरा भी शका नही करता। परिग्रह के वश तीव्र क्रोध करता है, परिग्रह के प्रभाव से ही महा अभिमान करता है, परिग्रह के लिये ही मायाचार प्रपच रचता है। परिग्रह की ममता से ही महालोभी होता है बहुत आरम्भ करता है जमाने भर का आरम्भ रचता है। वास्तव म देखा जाय तो जगत मे कषाय का मूल तथा अनर्थ की जड परिग्रह है, जो समस्त पापो से छूटना चाहते हैं उन्हें परिग्रह से विरक्त होना ही योग्य है।

मुनिराज, त्यागी तपस्वी साधु ता बाह्य परिग्रह के सवथा त्यागी होते हैं, अन्तरग के परिग्रह का भी दिना दिन अधिकाधिक अपने आत्म कल्याण के अर्थ क्षीण करते हुये आग बढते चले जाते है। व तो चौबीस प्रकार के समस्त परिग्रह विकार एव विकार उत्पन्न करने वाली वस्तुओ का परित्याग करके शुद्ध निर्मल अपरिग्रही स्वावलम्बी सयमी, आत्मध्यानी बन जाते हैं।

यद्यपि परम आत्म कल्याण की दृष्टि से समस्त परिग्रह त्याज्य है परन्तु जो गृहस्थ म रहकर धर्म सेवन करना चाहते हैं, उन्हे कुछ न कुछ थोडा बहुत परिग्रह अपने जीवन के निर्वाह अर्थ रखना ही पडता है। जो गृहस्थ के परिग्रह न होवे तो बाल दुकान म, रोग मे आपत्ति में विवाह म, परिणाम बिगड जाते हैं इसलिये गृहस्थ धर्म की रक्षा के लिए एव गृहस्थ के लिये अनिवार्य हो जाता है कि वह परिग्रह सचय करे। आजीविका का साधन न्याय और नीति पूवक करे। कहा है, कि साधु यदि तिलतुषमात्र भी परिग्रह रखता है तो नाना नारा स भ्रष्ट हो जाता है और गृहस्थ यदि उचित आवश्यकतानुसार परिग्रह सचय नही करता तो वह भी धर्म तथा नीति के मार्ग से च्युत हो जाता है। इसलिय गृहस्थ म थाडा बहुत परिग्रह सचय किय

चित्त परिणामों में स्थिरता नहीं रहती यदि आजीविका नहीं होती है तो इसके बिना स्वाध्याय में पूजन में धर्म ध्यान में परिणाम नहीं टिकते। सन्तोष नहीं रहता धैर्य छूट जाता है। आकुलता उत्पन्न होकर मनके परिणाम चंचल ही बन जाते हैं। किसी समय भी परिणामों में स्थिरता नहीं आने पाती। आजीविका के बिना शरीर की स्थिति नहीं, रक्षा नहीं, शरीर बिना व्रत और संयम तप धर्म साधन कैसे किया जा सकता है? इसीलिये गृहस्थ के लिए आवश्यक है कि देश काल को विचार कर अपनी गुञ्जायश शक्ति तथा अन्य सहायक साधना को ध्यान में रख न्याय मार्ग से आजीविका रूप श्रम साधन करे। पापवृत्ति का त्याग करके श्रम चारित्र का पालन करते हुए अपने को लोगों का विश्वासपात्र बनाये। असि मसि कृषि, वाणिज्य और शिल्पकला आदि प्राप्त कर आजीविका उपार्जन करने की योग्यता प्राप्त करे और फिर लाभान्तराय कर्म के क्षयोपशम अनुसार जो कुछ भी न्यूनाधिक लाभ हो उसमें सन्तोष करे और प्रसन्न चित्त रहे। उसी के अनुसार अपना और अपने कुटुम्ब का यथायोग्य पालन पोषण करे। ऋणवान् न हो और अपनी स्थिति के समान ही खर्च करे। दूसरों की स्पर्धा देखी अधिक खर्च न करे। शक्ति से अधिक खर्च करोगे तो दोनों लोकों से भ्रष्ट होकर दरिद्री बन जाना पड़ेगा। यश धर्म और नीति तीनों नष्ट हो जायगे। मलीनता आजायगी, शुभ ध्यान में बुद्धि नहीं लगेगी इसलिये सन्तोषपूर्वक अपनी आमदनी से कम खर्च करना ही गृहस्थ की श्रेष्ठ नीति है।

आजीविका की स्थिरता के बिना धर्म साधन भी नहीं हो सकता। जिसकी आजीविका स्थिर होती है उसके धर्म साधन में योग्यता होती है। कहा भी है 'भूखे भजन न होय गोपाला" जिसके इन्द्रियों की परिपूर्णता, नीरोगता होती है, न्याय अन्याय

का विवेक होता है धम अधम तथा याग्य अयोग्य का विचार होना है। जा विनयवान् होता है जो पराये धन और पर वनिता की ओर भूठे से भी दृष्टि उठाकर देखता तक नहीं, जिसके आलस्य और प्रमाद नहीं, जो धीर वीर है, देश काल के अनुसार वचन कहन की योग्यता जिसमे है उसको आजीविका और धम लाना का लाभ अवश्य होना है। गुणवान् निर्लोभी, आलस्य रहित, उद्यमी तथा विनयवान् के लिये आजीविका दुलभ नही होती है। पहले आप आजीविका के योग्य पात्र बनिये फिर आजीविका नियमपूवक लाभान्तराय कम के क्षयोपशम प्रमाण अवश्य मिलती रहेगी उसम सन्तोष धारण कर आनन्द पूवक रहिये। आजीविका प्राप्त होजाने पर अन्याय और अनीतिरूप प्रवत्ति ग्रहण कर उसे नष्ट नही करना चाहिये, यदि तीव्र असाता वेदनीय कम के उदय से नष्ट हो जानी है तो उसमें दुखी मत होओ सक्लेशित हो धम का पालन तो मत छोडो। अपने से अधिक दीन हीन जीवो की दशा विचार कर अपने परिणामो मे समता धारण करो। धम के साथ अपने कत्तव्य का पालन करते रहो। ऐसा यत्न करो कि धम न छूटने पाये। जैसा भी भोजन रस नीरस मिले, खाकर अपने को धन्य समझो।

यदि ऐसे दृढ परिणाम होव और जितना मिला है उसी मे सन्तोष कर वाछा रहित होग तो वर्तमान समय मे दुख ही नही होगा और समस्त पाप कम की ऐसी निजरा हा जावेगी कि धोर से धोर तपश्चरण करने पर भी कठिनता स हो सके। इस प्रकार परिग्रह परिमाण व्रत का धारक गहस्थ अपनी इच्छाओ को सीमित करते हुय आनन्द पूवक अपना जीवन व्यतीत करता है उसके हृदय मे शान्ति का निवास होता है और वह सत्पथ की ओर वेग से बढता है, यदि निर्धारित सीमा स अधिक धन या सम्पत्ति सयोग से प्राप्त हो जावे या निर्धारित सीमा से अधिक

ससार मे सुख और शाति स्थापित करने के लिये तथा विषमता को मिटाने के लिये अहिंसा परिग्रह ही अमोघ उपाय है परिग्रह परिमाण अहिंसा का ही एक पर्याय है। स्व० डाक्टर बनीप्रसाद साहब M A Ph D इस व्रत के सम्बन्ध में लिखते हैं —यदि इस अणुव्रत का पालन किया जाय तो इससे धन तथा साम्राज्य के लिये उस क्रूर तथा प्रचण्ड प्रतिद्विन्दता का अन्त हो जायगा जो आधुनिक युग का शाप है तथा सभी दुखो की जननी है। आज अपरिग्रह की जितनी आवश्यकता है उतनी पहले कभी नही थी। यह व्रत सर्वभक्षी भौतिकवाद का परिहार करने वाला है। एक दूसरे दृष्टिकोण से जिसे हम यो कह सकते है कि यह अणुव्रत सम्यक विवेक तथा वस्तुओं के समुचित मूल्यांकन की शिक्षा देता है जैनधर्म की प्रमुख देन है

प्रश्नावली

१—अपरिग्रह से आप क्या समझते हैं ?

२—परिग्रह की हानियाँ वर्णन कीजिये ?

३—क्या एक गृहस्थ पूर्णतया अपरिग्रही हो सकता है ? यदि नही तो उसका क्या कर्तव्य है ?

४—अपरिग्रहवाद ससार मे फैली विषमता को दूर करने मे कैसे और कहा तक सहायक हो सकता है ?

५—अपरिग्रही किन किन बातो से बचता है और एक सद्गृहस्थ रहते हुए वह अपना तथा अपने कुटुम्ब का पालन पोषण कैसे करता है ?

६— पैसे वाला साधु कौडी के काम का नही और बिना पैसे वाला गृहस्थ किसी काम का नही।" इस विषय पर एक निबन्ध लिखिये ?

७—'भूखे भजन न होहिं गोपाला" इस वाक्य की सत्यता असत्यता के सम्बन्ध मे अपने विचार प्रगट कीजिये ?

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य पर तप

ब्रह्मचर्य मानव जीवन का प्रधान अंग है। शारीरिक शक्ति और मानसिक विकास का अवलम्ब तथा स्वास्थ्य की चाबी है।

शरीर रक्षा के लिए ब्रह्मचर्य धारण करने की बड़ी आवश्यकता है। छात्रावस्था में बिना ब्रह्मचर्य व्रत पालन किए किसी प्रकार स्वास्थ्य रक्षा नहीं हो सकती। वीर्य शरीर का राजा है। वीर्य की रक्षा होने से ही शरीर की रक्षा हो सकती है। वीर्य की रक्षा होने से मस्तिष्क की शक्तियाँ बलवती होती हैं। ब्रह्मचर्य के प्रभाव से ही मनुष्य शरीर में अपूर्व तेज और स्त्री शरीर में सतीत्व की निर्मल ज्योति दिखाई देती है। ब्रह्मचर्य सर्व रोग नाशक और उत्तम स्वास्थ्य प्रदायक महौषधि है। नियमित ब्रह्मचर्य पालन करने से बल बुद्धि वर्ण और कान्ति की वृद्धि होती है। शरीर के सम्पूर्ण अंग प्रत्यंग और स्नायु-संस्थान दृढ़ होते हैं। मन में अपूर्व आनन्द उत्पन्न होता है, मानसिक और शारीरिक शक्ति की विशेष रूप से वृद्धि होती है।

ब्रह्मचर्य को भंग करने से महाभयंकर धातु दौर्बल्यादि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। धातुदौर्बल्यादि के उत्पन्न होने पर जीवनी शक्ति एकदम क्षीण हो जाती है। वीर्य के साथ हमारे मस्तिष्क और पाकस्थली का घनिष्ट सम्बन्ध है। धातु दौर्बल्यता के होने से मस्तिष्क में एक प्रकार का गौण रोग आ उपस्थित होता है और पाकस्थली अत्यन्त दुर्बल होकर अजीर्ण आदि अनेक व्याधियाँ

स्वदार सन्तोषी व्रत का पालन करने वाला अपने पुत्र, पुत्रियों को छोड़ अन्य के विवाह आदि के झगड़ा में नहीं पड़ता अनंग क्रीड़ा नहीं करता। अपना मन वचन काय की प्रवृत्ति नीच नहीं करता। भाण्ड रूप चेष्टायें नहीं करना, जैसे पुरुष होकर स्त्री का रूप बनाना, स्वांग रचना, स्त्रियाँ जैसी चेष्टायें करना। काम सेवन की तीव्र अभिलाषा नहीं रखना। व्यभिचारिणी स्त्रियों के घर आना जाना उनको अपने घर बुलाना, उनसे लेन देन करना परस्पर वार्तालाप करना उनके रूप शृङ्गार आदि का देखना इत्यादि व्यवहार कदापि नहीं करता। ब्रह्मचर्य व्रत का धारक गृहस्थ अन्य स्त्रियों की राग उत्पन्न करने वाली, राग बढ़ाने वाली तथा परिणामों को विकृत करने वाली कथायें न पढ़ता है, न सुनता है। अन्य की स्त्रियों के मनोहर अंगों को राग परिणामों तथा विकृत भावों के साथ देखने का त्याग करता है। ब्रह्मचर्य व्रत के धारण करने से पहले अव्रति दशा में भोग हुए भोगों को याद नहीं करना। इष्ट कामोद्दीपन करने वाले भोजन तथा खान पान का त्याग करता है। अपने शरीर में अंजन, मंजन, इत्र तेल फुलेल आदि काम विकार को जागृत करने वाले पदार्थों को लगाने का त्याग करता है। कामोत्तेजक वस्त्राभरणादिक का त्याग करता है। परिणामों को विकृत कर देने वाली सजावट बनावट नहीं करना।

ब्रह्मचर्य के पालन किये बिना जप तप संयम सब निष्फल हैं। कुशील पुरुष का विवेक जाता रहता है, उसकी चेष्टायें मदोन्मत्त हस्ती सरीखी हुआ करती हैं, उसके चित्त से भक्ष्याभक्ष्य, योग्यायोग्य का विचार जाता रहता है। प्रत्यक्ष आपदा और अपयश होता देखता है तो भी काम की अँधेरी उसकी आँखों में ऐसी छा जाती है कि उसे कुछ नहीं सूझता। पशु और कामान्ध में कोई अन्तर नहीं रहता, उसकी लोक-लाज समूल

नष्ट हो जाती है मरकर दुर्गति में नाना प्रकार के असह्य कष्ट भोगता हुआ संसार में परिभ्रमण किया करता है। शीलवान पुरुष अनुक्रम से स्वर्ग के सुख भोग मनुष्यों में प्रधान मनुष्य हो परम्परा से मोक्ष के अव्याबाध सुख को प्राप्त होता है।

वास्तव में ब्रह्मचर्य का माहात्म्य बड़ा है। इसके पालन में मनुष्य सदा नीरोग और सुखी रहता है इसी से अकाल, जरा और मृत्यु से रक्षा होती है इसी से हृष्ट पुष्ट बलवान सन्तान उत्पन्न होती है इसी से मनुष्य श्रुति सम्पन्न, सत्यवादी जितेंद्रिय और धर्मनिष्ठ होता है। इसी से भजन और ध्यान की योग्यता प्राप्त होती है इसी से धर्म साधन में रुचि और सिद्धि प्राप्त होती है इसी से मनुष्य निर्भय और विनम्र होकर जगत की सेवा कर विनम्र हो सकता है और इसी के बल से परम्परा से परमात्म पद को प्राप्त होता है।

विद्यार्थियों को चाहिये कि विद्याध्ययन करते समय पूर्ण ब्रह्मचर्य के साथ रहें। कुसंगति, खोटे उपयोग गरिष्ठ भोजन दुश्चरित्र व्यक्तियों का संपर्क और गंदे चित्रपट, सिनेमा, थियेटर आदि से सदैव बचते रहें। विवाह प्रौढ़ अवस्था में करायें, जब तक विवाह न हो ब्रह्मचर्य से रहें विवाह होने के पश्चात् स्वदार संतोष व्रत का पालन करें। ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये अपना जीवन सादा बनायें और अपने विचार उच्च रखें। ब्रह्मचर्य मनुष्य की शक्ति को विकसित होने में सहायक होता है। आत्म संयम का राजमार्ग है यह आदर्शों को समुज्वल बनाने वाला है व्यक्तित्व के सर्वतोमुखी निर्माण में सहायता प्रदान करता है इसके बिना मनुष्य ज्ञान-साधना तथा अपने उद्देश्यों को उस उच्च भूमिका पर नहीं पहुँच पाता जिस पर वह पहुँच सकने की क्षमता रखता है। ब्रह्मचर्य आन्तरिक विकास की एक सीढ़ी है। क्योंकि जीवन

का नैतिक मान ऊंचा करता है। मन की वृत्तियों पर अंकुश रखता है। आधुनिक समय में आत्म संयम की बड़ी आवश्यकता है। श्री कुलभद्राचार्य लिखते हैं —

> चित्त सदूषन कामस्तथा सद्गतिनाशन ।
> सद्वृत्त ध्वंसनश्चासौ कामोऽनर्थ परम्परा ॥
> दोषाणामाकर कामो गुणानाञ्च विनाशकृत् ।
> पापस्यच निजो बन्धु परापदाचैव संगम ॥
> तस्मा कुरुत सद्वृत्त जिनमार्गरता सदा ।
> य मत्तखण्डिता यान्ति स्मरशत्रु सुदुर्धरम् ॥

अर्थात्—काम भाव मन को दूषित करने वाला है, सद्गति का नाशक है सम्यक चारित्र को नष्ट करने वाला है। यह काम परम्परा अनर्थकारी है। काम दोषों का भण्डार है। गुणों का नाश करने वाला है। पाप का मुख्य बन्धु है। बड़ी-बड़ी आपत्तियों को बुलाने वाला है। इसलिये सदा जैनधर्म में लीन होकर सम्यक चारित्र का पालन करो जिससे अति दुर्द्धर काम की शक्ति चूर्ण चूर्ण हो जावे, ऐसा जान काम भाव का त्याग कर धर्म का पालन करो। कहा है —

> धर्ममाचर यत्नेन माभवस्त्वं मृतोपम ।
> सद्धर्म चेतसा पुंसा जीवितं सफलं भवेत् ॥
> मृतानैव मतास्ते तु ये नरा धर्मकारिण ।
> जीवतोऽपि मतास्तेव ये नरा पापकारिण ॥

अर्थात्—हे प्राणी ! धर्म का आचरण कर मृतक के समान मत बन। जिन मानवों के चित्त में सच्चा धर्म है उन ही का जीवन सफल है जो धर्माचरण करने वाले हैं वे मरने पर भी अमर हैं, परन्तु जो मानव पाप के मार्ग में जाने वाले हैं, वे जीते हुए भी मृतक के समान हैं। ब्रह्मचर्य का पालन परम धर्म है

इसके पालन मे कल्याण ही कल्याण है। पूज्य श्री हेमचन्द्रजी आचार्य का वाक्य इस सम्बन्ध म प्रत्येक छात्र को हृदयाङ्कित कर लेना चाहिये—

> प्राण भूत चरित्रस्य परब्रह्म क कारणम् ।
> समाचरन् ब्रह्मचर्य पूजितैरपि पूज्यते ॥

प्रश्नावली

१—मुनि और श्रावक के ब्रह्मचर्य व्रत म क्या अन्तर होता है ?

२—एक गृहस्थ को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कैसे करना चाहिये ?

३—ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन अपने शब्दो म कीजिये ?

४—ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा के लिय किन किन बातो की आवश्यकता है ?

५—"विद्यार्थी और ब्रह्मचर्य" इस विषय पर एक निबन्ध लिखिये ?

६—अब्रह्मचर्य से शरीर स्वास्थ्य की क्या क्या हानियाँ होती हैं ?



श्री नेमिचन्द्राचार्य और वीरशिरोमणि चामुण्डराय

भारत वसुंधरा पर मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त, बिम्बसार अशोक का पौत्र सम्प्रति, हूणवधन का जाने से रोकने वाला चालुक्य पुलकेशिन दिल्ली के राजसिंहासन पर आसीन अन्तिम हिन्दू सम्राट श्री हेमचन्द्र (हेमू) आदि अनेकों जैन राजा हो चुके हैं और उदयपुर के दीवान भामाशाह, जयपुर के दीवान अमरचन्द तथा वीर चामुण्डराय आदि भी अपने सद्कार्यों से अपने गौरव पूर्ण नाम को अमर कर गये हैं।

दक्षिणी भारत में तो चोल, पाड्य, केरल, चालुक्य, राष्ट्रकूट आदि अनेकों वंशों मे अनेक राजमन्त्री व नरेश हो चुके हैं जिन्हें इतिहास के लेखक क्यों दृष्टि ओझल कर जाते हैं महान् आश्चर्य है।

मसूर राज्य गंगवाडी देश नाम से प्राचीन काल में अति विख्यात था। दूसरी शताब्दी से यहाँ गंग वंशीय जैन क्षत्रियों का राज्य था इसी वंश में दसवीं शताब्दी में मारसिंह द्वितीय राज्य करते थे। चामुण्डराय इन्हीं के सेनापति व राज्यमन्त्री थे।

इनके राज्य काल में गंगसेना ने चोल पाड्य और नोलम्बादि देशों के पल्लव राजाओं से रणागण में लोहा लिया था और विजय पाई थी। अन्त में मारसिंह नृपति ९७५ ई० में आचार्य अजितसेन के निकट बंकापुर में समाधिलीन हुये। इनके उपरान्त राचमल्ल द्वितीय ने सिंहासन को सुशोभित किया, पश्चात् राक्षस नृपति हुए। चामुण्डराय ने तीनों राजाओं की कीर्ति महिमा को अपनी सेवा में सुरक्षित रखा था।

दीर्घायु मालमशाली चामुण्डराय ब्रह्मक्षत्र वश के रत्न थे। इनके माता पिता तथा जन्मस्थान और तिथि का कुछ पता नहीं चलता। इसी प्रकार श्री नमिचन्द्राचार्य का प्रारम्भिक जीवन का भी पता नहीं चलता। हाँ, यह स्पष्ट है कि चामुण्डराय का अधिक समय गंगा की राजधानी तलकाड में व्यतीत हुआ।

चामुण्डराय की माता कालकदेवी थीं यह जैन धर्म की दृढ श्रद्धालु थी, अतः चामुण्डराय भी उन्हीं के प्रतिरूप हुये। चामुण्डराय ने अजितसेन स्वामी से श्रावक व्रत लिये थे और आचार्य आर्यसेन के पास इन्होंने सब शस्त्र शास्त्र विद्या सीखी थी। किन्तु चामुण्डराय के जीवन साँचे को ठीक ठीक ढालने वाले श्री नेमीचन्द्र ही थे। चामुण्डराय को अध्यात्मज्ञान आपसे ही प्राप्त हुआ था। इनका विवाह अजितादेवी नाम की रमणी रत्न से हुआ था। गृहस्थाश्रम प्रवेश कर चामुण्डराय धर्मात्मा नागरिक बन गये और गंग राजाओं के प्रधान सेनानी तथा प्रधानमन्त्री बनाये गये। अर्थात् मैसूर राज्य के भाग्य विधाता चामुण्डराय बने। इनके गुणों के लक्षक विद्वानों ने ब्रह्मक्षत्र कुल भानु ब्रह्मक्षत्र कुलमणि आदि नामों से अलङ्कृत किया था। शासन सभा हाथ में होते पर भी आपने धर्म व नीति उल्लघन नहीं की। उनके लिये पर द्रव्य पत्थर और पर स्त्री मात तुल्य थी अतः व शौचाभरण थे। अपनी सत्य निष्ठा के कारण वे सत्य युधिष्ठिर कहलाये। उन्हें चामुण्डराय गोम्मटदेव भी कहते थे। वीरोचित कार्यों से वीरमार्तण्ड कहाते थे। पूर्व जन्म के सम्बन्ध में सतयुग यण्मुराय कहे जाते थे। त्रेता में वीरमार्तण्ड थे।

चामुण्डराय के सम्बन्ध में कुछ मिल भी जाय पर श्री नमिचन्द्रजी का कुछ भी नहीं मिलता। कौन माता पिता, दीक्षागुरु थे? पर इनके साधु जीवन का कुछ हाल मिलता है, जिससे

महान् पुरुष सिद्ध होते हैं। यह मूल संघ देशीय गण के आचार्य थे। गोम्मटसार में उन्होंने गुरुवत् अभयनन्दि, इन्द्रनंदि, वीरनन्दि, कनकनंदि को स्मरण किया है पर असली गुरु कौन थे पता नहीं लगता। चामुण्डराय के यहाँ आचार्यजी की अति मान्यता थी। एक दिन आचार्यजी ने पोदपुर के गोम्मटेश्वर की विशाल मूर्ति का वर्णन किया। कालकदेवी उनका हाल पहिले सुन चुकी थी। उनने इस पावन तीर्थ के दर्शन का दृढ निश्चय किया। श्री आचार्यजी भी इनके साथ थे, जब श्रवण बेलगोल के पास आये तो जनता से अवगत हुआ कि वहां कुक्कुट सर्पों का स्थान है, मार्ग दुर्गम है। धर्मात्मा कालादेवी अति दुखी हुई। तब श्री चामुण्डराय से नेमीचन्द्रजी ने कहा, मुझे पद्मावती ने निद्रा के समय कहा है, जहाँ ठहरे हो वहाँ से पास ही राम रावण से पूजित एक गोम्मटेश्वर की मूर्ति है। लोग उसे भूले हुये हैं। उसका उद्धार कराकर सुयश कमाइये। इससे सबको सन्तोष हुआ और खोज करने पर मूर्ति प्रतिष्ठित हुई। श्री अजितसेनाचार्य प्रतिष्ठा करने वाले थे। चैत्र शुक्ला ५ इतवार ता० १३ मार्च ९८१ को यह सुखद घटना हुई, इसी रोज श्रवण बेलगोल के पर्वत के ऊपर ५८ फुट ऊँची विशालकाय मूर्ति का उद्घाटन हुआ जो चामुण्डराय के यश को घ्वनित कर रही है और संसार की अद्भुत वस्तुओं में से एक है।

श्री गोम्मटेश्वर की मूर्ति स्थापना के कारण चामुण्डराय "राय" नाम से प्रसिद्ध हुये। उन्होंने श्री नेमिचन्द्र की पाद पूजा कर मूर्ति रक्षा के लिये कई ग्राम दिये, जो अद्यावधि लगे हुए हैं। चामुण्डराय की यह मूर्ति स्थापना बड़े महत्त्व की है। जिन पूजा का अधिकार जीवमात्र को है। उनकी यह मूर्ति स्थापना जैनधर्म के इस विधान रूप को प्रकट कर रही है। आज

गोम्मटेश्वर के स्नान के लिये जन मनैत, देशी विदेशी सब ही आते हैं और अपने आप को कृतकृत्य समझते हैं। वास्तव में श्रवणबेलगोल की यह शिल्पकला दर्शनीय वस्तु है और आचार्य महाराज की अद्भुत सूझ सूचक है। आचार्यजी ने चामुण्डराय के कार्यों का वर्णन इस भाँति किया है गोम्मटसार संग्रहसूत्र गोम्मटशिखर के ऊपर चामुण्डराय के बनवाये मन्दिर एक हाथ प्रमाण इन्द्रमणि का श्री नेमीनाथ का प्रतिबिम्ब तथा लोक में प्रसिद्ध दक्षिण कुक्कुट जयवन्त प्रवर्तो। इस प्रतिमा का मुख सर्वार्थसिद्धि के देवों ने तथा सर्वावधि के देवों ने देखा है।

इस प्रकार श्रवण बेलगोला को चामुण्डराय ने विपुल धन व्यय करके बनवाया इससे चामुण्डराय जनप्रिय और धर्मप्रभावक बने। श्री नेमिचन्द्राचार्य का एक कार्य और भी अत्यन्त महत्व पूर्ण है।

एक बार श्री आचार्य सिद्धान्त ग्रन्थों का पाठ कर रहे थे, चामुण्डराय के आने पर उन्हें बन्द कर दिया। चामुण्डराय के पूछने पर आचार्य ने कहा कि गृहस्थों का इनमें सहज प्रवेश नहीं है। तब चामुण्डराय ने कहा मुझे इनका ज्ञान कैसे होगा? तब आचार्य ने गोम्मटसार कर्म काण्ड जीव काण्ड लब्धिसार, क्षपणासार आदि संक्षेप संग्रह सूत्र बनाये जो आज भी दुर्जेय हैं। इनके सिवाय द्रव्यसंग्रह तथा प्रतिष्ठा पाठ भी बनाये।

गुरु के अनुरूप चामुण्डराय ने भी संस्कृत, प्राकृत, कनडी भाषा में रचनायें की थी। जिनमें चारित्रसार, त्रिषष्टि लक्षण पुराण उपलब्ध हैं। पहला आचार ग्रन्थ है, दूसरा कनडी भाषा में पुराण है, जो बंगलौर में छपा है। चामुण्डराय ने कनडी भाषा में गोम्मटसार की टीका भी रची थी। गुरु और शिष्य ने धर्म प्रभावनार्थ कुछ उठा नहीं रक्खा। यह हुआ चामुण्डराय का धार्मिक पहलू, परमार्थ साधते हुए चामुण्डराय ने लोक-

[illegible]

[illegible] थी। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रही थी।

[illegible] युद्ध में [illegible]। [illegible] हुआ [illegible] पुरंदर पद पाया। [illegible] विग्रह में [illegible] वीर-मार्तण्ड कहलाये। [illegible] आधार पर [illegible] कहलाये। [illegible] त्रिभुवन वीर [illegible] गोविन्दराज को पराजित किया और [illegible] कहलाये। [illegible] भुज विक्रम कहलाये। [illegible] कहलाये। [illegible] समर परशुराम और प्रतिज्ञा[illegible] कहलाये। अन्य वीर [illegible] कहलाये। इसी प्रकार सुभट [illegible] भी प्रसिद्ध थे [illegible] और [illegible] थे। ये महान योद्धा राजमन्त्री तथा चतुर राजनीतिज्ञ थे। राजमन्त्री पद से जो शासन व्यवस्था [illegible] थी उसके जानने के साधन अब नहीं हैं किन्तु उस समय जो धर्म, शिक्षा, शिल्प व्यापार की समृद्धि हुई। उस समय के सुन्दर मन्दिर राजमहल भव्य मूर्तियों

का विशाल सरोवर आज भी दर्शनीय है। इस समय गग वश ससार का चौथा उत्कृष्टतम राज्य था।

पडौसी राज्या से चामुण्डराय का व्यवहार सदा सुदर रहता था। उन्होंने राष्ट्रकूटों के लिये कई युद्ध करकर इसे गग वश का चिरऋणी बना दिया।

चामुण्डराय के समय गग राज्य की केवल शासन शिल्प और व्यापार की ही उन्नति नहीं हुई वरन् साहित्य की भी महान् उन्नति हुई। चामुण्डराय युद्ध क्षात्र के बचे हुए समय में भी साहित्य रचना न भलत थ वे और कवियो को प्रोत्साहन देते थे। इनमे कनडी भाषा के आदिसम्प घन रण्ण और नागवम प्रसिद्ध हैं।

सस्कृत प्राकृत म अजितसेन नेमिचन्द्र माधवचन्दजी उद्भट आचाय उल्लेख योग्य हैं।

चामुण्डराय जसे देश-रक्षा और राज प्रबध मे पटु थे वसे ही श्री नेमिचद्राचाय धर्मोन्नति और शासन रक्षा मे निपुण थे। जन दशन का ममन उनसा कोई नहा था। उन्हे इसलिये सिद्धान्त चक्रवर्ती पद से अलकृत किया गया था। भारतीय इतिहास मे उनकी गुण गरिमायें गाई है—

सिद्धान्ताम्भोधिचन्द्र प्रगुनपरमदशी गणाम्भोधिचन्द्र ।
स्याद्वादाम्भाधिचन्द्र प्रकटित नय नि ार वारांगिचन्द्र ॥
एनश्चक्रोपचन्द्र पदनुत कमलप्रान चन्द्र प्रशस्तो।
जीयात् नानाधिचन्द्रो मुनिय कुल विपच्च द्रमा नमिचन्द्र ॥

श्रावका मे चामुण्डराय वीरा म अग्रणी श्रावक है और मुनिया मे श्री नमिचन्द प्रमुख पक्ति म स्थान पाने योग्य हैं। उनके काय उन्हें सम्यक्त्व रत्नाकर प्रकट करते हैं वे महान् धर्मात्मा, कवि और सत्य पालक थे।

प्रश्नावली

१—श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती कौन थे, उनके क्या कार्य हैं ?

२—चामुण्डराय का किस राज वंश से सम्बन्ध रहा है ?

३—चामुण्डराय की क्या पदवियाँ थी और उन्हें कैसे प्राप्त हुईं ?

४—गोम्मटदेव से क्या अभिप्राय है और उनकी मूर्ति कहाँ प्रतिष्ठित हुई ?

५—गोम्मटदेव की मूर्ति आश्चर्य-कारक क्या है ?

६—श्री नेमिचन्द्र ने कौन से शास्त्रों को बनाया है ?

७—श्री चामुण्डराय ने कौन से शास्त्रों को बनाया है ?

८—श्री चामुण्डराय ने कौन से लोकोपकारक कार्य किए हैं ?

९—श्री चामुण्डराय को योग्य बनाने में किन किन गुरुओं का हाथ है ?

१०—गोम्मटदेव कौन थे और उनके जीवन का क्या इतिहास है ?



महावीर–सन्देश

(श्री पंडित जुगलकिशोरजी मुख्तार)

यही है महावीर सन्देश।
विपुलाचल पर दिया गया जो।
प्रमुख धर्म उपदेश ।।यही०।।

(१)

सब जीवों को तुम अपनाओ,
हर उनके दुख क्लेश।
असद्भाव रक्खो न किसी से,
हो अरि क्यों न विशेष ।।यही०।।

(२)

वैरी का उद्धार श्रेष्ठ है,
कीजे सविधि विशेष।
वैर छुटे उपजे मति जिससे,
वही यत्न यत्नेश ।।यही०।।

(३)

घृणा पाप से हो, पापी से
नहीं कभी लवलेश।
भूल सुझाकर प्रेम मार्ग से
करो उसे पुण्येश ।।यही०।।

अहिंसा

यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है कि हिंसा पशुता का चिह्न है। जब एक पशु की नाद में दूसरा पशु मुँह घुसाता है तो उसे निमन्त्रण देकर मिलकर खाने का न्याय पशु समाज में नहीं है। गुर्राना, मारना, झपटना ही वहाँ अधिकार रक्षा का एकमात्र साधन है। लेकिन मानवता सदा ही पशुता से अपेक्षाकृत अधिक विकसित रहा है। अहिंसा उसी विकसित मानवता का सुन्दर परिणाम है। यही कारण है कि प्रत्येक धर्म में अहिंसा को किसी न किसी रूप में अपनाया है। पर जैन धर्म में अहिंसा की उच्चकोटि की रूपरेखा प्रतिपादित है।

जैनधर्म की अहिंसा जीओ और जीने दो की भावना निहित है। जैनधर्म की अहिंसा जहाँ आक्रमणकारी पर आक्रमण कर पराजित करने को बाध्य करती है वहाँ शरणार्थी शत्रु को शुद्ध अन्तःकरण से क्षमा प्रदान कर सुन्दर सहोदर के समान अपनाने को भी बाध्य करती है। वीरों के साथ वीरता का व्यवहार करने की शिक्षा देने वाली विश्व में एकमात्र जैनधर्म की अहिंसा ही है। जैनधर्म की अहिंसा में उस पिता का हृदय है जो अपने प्राणप्रिय पुत्र को कठोर कर्तव्य का पालन करने के लिये प्राण तक दे देने के लिए कहता है। जैनधर्म की अहिंसा सिखलाती है सम्पूर्ण प्राणियों को अपने समान समझो। गुणवानों के गुणों में अनुराग करो दुःखी जीवों पर दया करो। इसी उच्चकोटि के उद्देश्य में मानवता की पूर्णता और मानवीय जीवन की सार्थकता सन्निहित है।

आज संसार में चारों ओर हिंसा का ही बोलबाला है। सबल जीव निबल जीव के प्राण लेने में तनिक भी नहीं हिचकिचाता। हिंसा को हम हिंसा ही नहीं समझते 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' का नारा लगाकर धर्म के नाम पर भी हिंसा की जाती है। न मालूम कितने मूक पशुओं की बलि प्रतिवर्ष धर्म के नाम पर दे दी जाती है। मनुष्य कितना अविवेकी हो गया है कि एक साधारण सी बात को भी नहीं समझता कि जो व्यवहार हम दूसरों का अपने प्रति पसंद करते हैं हमें वही व्यवहार दूसरों के प्रति भी करना चाहिए।

अहिंसा धर्म जगत-व्यापी है। हिन्दु, जैन, बौद्ध, ईसाई मुसलिम सिख पारसी सबने अहिंसा को धर्म की जड़ बनाया है पर फिर भी हिंसा का प्रचार हो रहा है। अहिंसा सिद्धान्त का पूरा आचरण इनमें कहीं भी नहीं है।

यों तो संसार हिंसात्मक बना हुआ है और मानव मात्र अहिंसामय है। नरकों में नारकियों में मार काट मची रहती है पशुओं में सबल निबल को खा जाता है। बिल्ली आदि तो भूख में अपने ही बच्चों को खा जाती है। मनुष्य मनुष्य के खून का प्यासा हो रहा है, इसी लिए तो अदालतों में फौजदारी के बहुतायत से केस आते हैं और फाँसी तथा कैद की सजायें होती हैं।

कुरान पुरान आदि ग्रन्थों में अहिंसा का नियम होते हुए भी Thou shalt not kill तू वध नहीं करेगा, यह ईश्वर के १०वें आदेश में कहा है, फिर भी मनुष्य हिंसा नहीं करेगा। यह अर्थ स्वार्थवश किया जाता है।

यज्ञ के लिए पशु बनाए हैं। महापुरुष इब्राहीम ने अपने पुत्र को काट कर ईश्वर भेंट करना चाहा, अतः धर्म के लिए पशु मानव हत्या निषेध नहीं ऐसा लोग कहते हैं। विदेशों में तो पशु हिंसा

कम हो रही है पर भारत में यह बढ़ती जा रही है। देश गउशालाओं में बाहर के दिन भरे कटते हैं, काली माई के सामने प्रतिदिन सैकड़ों बकरे कटते हैं।

बौद्ध धर्म में यद्यपि मांसाहार निषेध है। पर चीन, जापान, ब्रह्मा के लोग फिर भी मांस खाते हैं। धर्म के नाम पर हिंसा तो सदा से होती रही है। हिन्दु, मुसलमानों आदि के झगड़े इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। ईसाइयों के आपसी झगड़े प्रसिद्ध ही हैं। राजनैतिक झगड़े भी इसी के प्रमाण हैं। एटमबम को गिरा कर जापान को टोकियो जैसे नगर को भूमिसात कर दिया है।

हिंसा के नाम पर गोली देकर कुत्ता, चूहों, बन्दरों का मरवाना तो सभ्य नागरिकों का सहज काम समझा जाता है पशुओं की गिल्टियाँ काट कर तरह तरह की दवाइयाँ बनाई जाती हैं। अब तो ऐसे बहादुर बन रहे हैं कि मच्छरमार, मक्खीमार, टिड्डीमार पैदा हो रहे हैं।

आज बहादुरी से शिकार न कर छिप कर शेर चीतों का मारने वाले मनुष्य-पशु पैदा हो रहे हैं। शास्त्रों में तो दीनों पर दया करना बतलाया है, पर सांप बिच्छू को जो अपने को बचाने को मारे मारे फिरते हैं, उनके मारने में बहादुरी बताई जाती है। यदि मानव इनसे प्रति समता दिखावे तो वे भी न काटें। साधुओं के शरीर पर सांप लिपटने पर भी नहीं काटते। ईसाई धर्म में फ्रान्सिस एक ऐसे महात्मा हुए हैं कि जिनके प्रेम से आकृष्ट हो सिंहादिक जीव उनके चरणों में लोटते थे।

कुछ लोग घायल या रोग पीड़ित जीवों को तत्काल मार देने से इससे उपकार मानते हैं तो वे अपने पुत्र स्त्री मित्रादि को रोगादि ग्रस्त होने पर क्यों नहीं मार डालते और इस प्रकार मानव घात करने वाले को फाँसी का दण्ड क्यों दिया जाता है? शरीर में जब

तब स्वाम तन तन ग्राण रहती है ग्रत नाग ग्रसिन को मार डालना धम नहीं है। कुछ नाग कहते है कि हिंसा के बिना उन्नति नहीं हो सकती। ग्रहिंसा कायर बनाती ह समाज पतन का कारण है, यह उनकी भूल ह। ग्रहिंसा तो मनुष्य को वीर साहसी बनाती ह, सामाजिक विकास का कारण ह। पूण ग्रहिंसा तो हम पाल ही नहीं सकते। दिगम्बर मुनि ही पालते हैं, श्रावक को केवल सकल्पी हिंसा ही त्याज्य ह, वाकी हिंसाम्रो को हेय समझ कर भी छोड नही सकता।

जन पुराणो स विदित होता ह कि श्रीरामचन्द्रजी, हनुमान जी ने तथा पाण्डवो ने जन गृहस्थ होकर महान् युद्ध किये। बाद में हिंसा छोड यागी वन मोक्ष पधारे। सम्राट चन्द्रगुप्त सम्प्रति, गयमल्ल, पुलकेशिन चामुण्डराय ग्रादि कलिंग के खारवेल गुजरात के कुमारपाल ग्रादि राजाग्रो न युद्ध करके भी धम की ध्वजा फहराई।

ग्रत जनधम पालते हुए भी सम्राट सेनापति राजमन्त्री ग्रादि सब ही कुछ हो सकता है जनधम म कोई रुकावट नही ह।

जनधम मे हिंसा को समझने के लिये हिंसा स्थानो को समझना चाहिये। ५ इन्द्रिय ३ बल ग्रायु श्वासोछ्वास य १० प्राण हैं। एकेन्द्रिय वृक्ष के ४ द्वीन्द्रिय लट के ६ तीन इन्द्रिय कीडी के ७ चार इन्द्रिय मक्खी के ८ ग्रसनी के ९ सनी के १० इस तरह प्राण होते हैं। इनमे जिसके अधिक प्राण होते हैं, उसके मारने म हिंसा ग्रौर ग्रधिक हानी है।

भावों की शुद्धता पूवक प्रवत्ति करने पर यदि जीव की मृत्यु भी हो जाय तो पाप नही लगता यदि भावो म कलुपता हो ग्रौर जीव ग्रायु की प्रबलता मे न मरे तो भी पाप लगता ही है। कभी एक न भी ग्रनेको के मारने का पाप लगता है।

अनिच्छावश मारने पर भी पाप नहीं लगता आदि। यथा डाक्टर द्वारा जीव न बचने पर भी फांसी नहीं लगती। लार्ड अरविन की ट्रेन पर बम पटकने वाल को भी दण्ड दिया जाता है। अत हिंसा अहिंसा भावो पर ज्यादह आधारित है।

शास्त्रो म हिंसा का स्वरूप यह कहा है राग द्वेष का आत्मा मे पदा होना हिंसा ह न पदा होना अहिंसा है। अहिंसा व्रत ही मुख्य है, बाकी व्रत तो उसके समझाने के लिये कहे हैं।

हिंसा का दारोमदार भावो पर ज्यादह आश्रित है। रोगी को दवा देने से, कपडो को साबुन म धोने से अनेको कीटाणु मरते है, किन्तु यहाँ भावो म शरीर को बचाना भाव है। अत हिंसा नहीं होगी बल्कि विरोधी होगी।

श्रावक अनाज चुनेगा, कपडे धोवेगा, नहावेगा, आहार विहार करेगा और इनमे जीवो का वध होगा फिर भी हिंसक नहीं कहलावेगा। किन्तु अब पाश्चात्यो से प्रभावित होकर ऐसे परिणाम होने लगे हैं जो स्वार्थ से भरपूर हैं। मेज पर कागज चिपका कर मक्खी मारते हैं तेल छिडक कर मच्छर मारते हैं। अनाजो के कोटे सडते रहते हैं उनके बिना जनता के प्राण जाते रहते हैं, यह अहिंसा है या हिंसा। अत शुभ भाव युक्त प्रवृत्ति करना अहिंसा है दुर्भावयुक्त प्रवृत्ति हिंसा है।

प्रश्नावली

(१) अहिंसा की मान्यता किस किस सम्प्रदाय म है ?
(२) आज मानव समाज की क्या स्थिति है ?
(३) धर्म के लिये जीवो के वध मे क्या हानि है ?
(४) क्या बौद्ध निरामिष भोजी हैं ?
(५) कुत्ता, बन्दरो का मारने म क्या हानि है, क्योकि व मनुष्य

या जन गृहस्थ युद्ध कर सकता है ?

भारतीय जन नरेशा का परिचय दीजिये ?

हिंसा और अहिंसा का सरल सुबोध स्वरूप बतलाइए ?

"जनियों को अहिंसा ने कायर बनाया है। ये कीड़ी की ता दया करते हैं पर पचेन्द्रिय पर दया नहीं करते। इसका आप क्या उत्तर देंगे ?

अहिंसा सब साधारण योग्य किस प्रकार हो सकती है ?



अहिंसा

(श्री० कविरत्न पं० गुणभद्रजी जैन)

---

(१)

मुनिजन मानस-अगोचर की हस्ती तू,
जीवन की साधना रही है तू जमाने की।
तू ही तो बनाती सब प्राणियों में बन्धु भाव,
पद्धति सिखाती धर्म मार्ग के निभाने की॥
माता के समान तू तो पालक सहायक है,
तू ही है प्रथम सीढ़ी मोक्ष सुख पाने की।
तेरी ही उपासना से भाग जाते पाप ताप,
सुन्दर अहिंसा एक चिह्न वीर बाने की॥

(२)

स्वर्ग अपवर्ग सब निकट अहिंसा के हैं,
पौष्टिक रसायन है बोध के बढ़ाने की।
जगत का जीवन इसी से तो स्थिर है आज,
कुञ्जी है मधुर सुख द्वार खुलवाने की॥
मित्र के समान उपकारी देहधारियों को
युक्ति है अपूर्व स्निग्ध भाव का बसाने की।
वीरता तो मिलती है मगर ये अहिंसा से ही
इस से अहिंसा वस्तु एक वीर बाने की॥

(३)

तोप बम टारपीडो टैंक राक्षसों के तुल्य,
करते हैं शान्ति भंग सकल जमाने की।
हो रहा है रक्तपात आसुरी कुसाधनों से,
उठी लालसा है परदेशों के दबाने की॥
हिंसा से न शान्ति होती दुष्ट भावनायें कभी
होती अभिलाषा दूसरों को लूट खाने की।
हिंसा के समान है न कोई विकराल पाप
परम अहिंसा शोभा एक वीर बाने की॥

प्रश्नावली

(१) वीर बाने का चिह्न क्या है?

(२) इस कविता का भावार्थ अपने सरल शब्दों में बतलाओ।

(३) इस कविता को याद करके मुखाग्र सुनाओ।

(४) इस कविता के रचने वाले का नाम बतलाइए?

चित्रकला और मूर्तिकला का आदर्श

देहली का जैन लाल मन्दिर

(प० राधेश्याम पाठक एम० ए०, साहित्यरत्न, गाजियाबाद)

'वीर' से उद्धृत

भारत की राजधानी मे लाल किले के सामने ही निर्मित जैनमन्दिर के प्राङ्गण मे प्रवेश कर मानव अन्तरात्मा एक अपूर्व शान्ति का अनुभव करती है। यह मन्दिर उपासना की पवित्रता के लिये जितना प्रसिद्ध है, उतनी ही पवित्रता तथा सुन्दरता पूर्ण कला की भी यहाँ पर प्रतिष्ठा की गई है।

आदर्श चित्रकला

मन्दिर के सामने के प्रकोष्ठ मे—जहाँ भगवान् महावीर स्वामी तथा अन्य २४ तीर्थङ्करों की प्रतिष्ठित मूर्तियाँ विराजमान हैं। दीवार पर जिस चित्रकला के दर्शन दर्शकों को होते है, उस चित्रकला मे भारत की परम्परागत दो प्राचीन चित्र शैलियों के सुन्दर सम्मिश्रण हैं। ऐसा आभास होता है जैसे कलाकारों ने राजस्थानी और मुगल शैली का समानुपात मे समन्वय किया है।

राजस्थानी शिल्प की वेष भूषा, शरीर अनुपात तथा भाव भगिमा का प्रयोग इस दीवार पर बड़ी सुन्दरता के साथ चित्रित किया गया है। किन्तु मुगल काल की विशेष चमक तथा सुनहरे चित्रण की शोभा भी इन चित्रों मे देखने को मिलती है। इन सभी चित्रों का विषय यद्यपि धार्मिक है, किन्तु इस विशेष चित्रण मे किसी वर्ग विशेष पर ध्यान नहीं दिया गया है।

मूर्तियों पर सराहनीय कला

मंदिर की भव्य प्रतिमाओं के दर्शन मात्र से ही जिस पुनीत शीतल प्रवाह हृदय में बहता है वह हृदय की समस्त कलुषता को स्वच्छ कर देता है। इसी पवित्रता को बढ़ाने के लिये मंदिर का वातावरण जहाँ अपना सहयोग देता है वहाँ हमें मन्दिर में बनी मूर्तियों की भी सराहना करनी होगी।

जैन मूर्तियों का प्रभाव

मन्दिर की मूर्ति कला उच्चकोटि की है और हृदय पर शान्ति और वैराग्य का एक गहरा प्रभाव डालती है। मूर्तियों के द्वारा कलाकार ने बड़े कौशल से पत्थर की छाती पर अङ्कित किया गया है। साथ ही आसन मुद्रा में। यह सभी मूर्तियाँ आकार के अनुपात की दृष्टि से भी दोषपूर्ण नहीं हैं। मूर्तियाँ अधिकांश संगमरमर की बनी हैं। एक मूर्ति काले पत्थर की भी देखने को मिलती है। मूर्तियों को देख कर हमारे हृदय पर तीन प्रकार का प्रभाव पड़ता है।

१—अपूर्व शान्ति का प्रभाव

२—अनुपम वैराग्य का स्रोत,

३—कलात्मक सौंदर्य का प्रभाव

यह कलात्मक सौंदर्य ही इन पूज्य मूर्तियोंमें प्रमुख गुण है। इस विशेष गुण के कारण उपर्युक्त दोनों प्रभाव हमारे हृदय पर पड़ते हैं। मूर्ति कला की स्वच्छता सरलता, रेखाओं की स्निग्धता इन सभी मूर्तियों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

यह तो नहीं कहा जा सकता कि इनमें कुछ मूर्तियाँ कितनी पुरानी हैं किन्तु कला की दृष्टि से यह सभी मूर्तियाँ प्राचीन ही जान पड़ती —

चित्रकला और मूर्तिकला का आदर्श

देहली का जैन लाल मन्दिर

(प० राधेश्याम पाठक एम० ए० साहित्यरत्न, गाजियाबाद)

वीर' से उद्धृत

भारत की राजधानी मे लाल किले के सामने ही निर्मित जैनमन्दिर के प्राङ्गण में प्रवेश कर मानव अन्तरात्मा एक अपूर्व शान्ति का अनुभव करती है। यह मन्दिर उपासना की पवित्रता के लिये जितना प्रसिद्ध है, उतनी ही पवित्रता तथा सुन्दरता पूर्ण कला की भी यहाँ पर प्रतिष्ठा की गई है।

आदर्श चित्रकला

मन्दिर के सामने के प्रकोष्ठ मे—जहाँ भगवान् महावीर स्वामी तथा अन्य २४ तीर्थङ्करों की प्रतिष्ठित मूर्तियां विराजमान हैं। दीवार पर जिस चित्रकला के दर्शन दर्शकों को होते हैं, उस चित्रकला मे भारत की परम्परागत दो प्राचीन चित्र शैलियों के सुन्दर सम्मिश्रण हैं। ऐसा आभास होता है जैसे कलाकारों ने राजस्थानी और मुगल शैली का समानुपात में समन्वय किया है।

राजस्थानी कल्प की वेष भूषा, शरीर अनुपात तथा भाव भंगियों का प्रयोग इस दीवार पर बड़ी सुन्दरता के साथ चित्रित किया गया है। किन्तु मुगल काल की विशेष चमक तथा सुनहरे चित्रण की शोभा भी इन चित्रों मे देखने को मिलती है। इन सभी चित्रों का विषय यद्यपि धार्मिक है किन्तु इस विशेष चित्रण मे किसी वर्ग विशेष पर ध्यान नहीं दिया गया है।

मूर्तियों पर सराहनीय कला

मंदिर की भव्य प्रतिमाओं के दर्शन मात्र से ही जिस पुनीत स्रोतस्वी प्रवाह हृदय में बहता है वह हृदय की समस्त कलुषता को स्वच्छ कर देता है। इसी पवित्रता को बढ़ाने के लिये मन्दिर का वातावरण जहां अपना सहयोग देता है वहाँ हमें मन्दिर में बनी मूर्तियों की भी सराहना करनी होगी।

जैन मूर्तियों का प्रभाव

मंदिर की मूर्ति कला उच्चकोटि की है और हृदय पर शान्ति और वैराग्य का एक गहरा प्रभाव डालती है। मूर्तियों के शान्त नेत्रों को बड़े कौशल से पत्थर की छाती पर अङ्कित किया गया है। साथ ही आसन मुद्रा में। यह सभी मूर्तियां आकार के अनुपात की दृष्टि से भी दोषपूर्ण नहीं हैं। मूर्तियाँ अधिकांश संगमरमर की बनी हैं। पर मूर्ति काले पत्थर की भी देखने को मिलती है। मूर्तियों को देख कर हमारे हृदय पर तीन प्रकार का प्रभाव पड़ता है।

१—अपूर्व शान्ति का प्रभाव
२—अनुपम वैराग्य का ज्ञान
३—कलात्मक सौंदर्य का प्रभाव,

यह कलात्मक सौंदर्य ही इन पूज्य मूर्तियों में प्रमुख गुण है। इस विशेष गुण के कारण उपयुक्त नाना प्रभाव हमारे हृदय पर पड़ते हैं। मूर्ति कला की स्वच्छता सरलता, रेखाओं की स्निग्धता इन सभी मूर्तियों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

यह तो नहीं कहा जा सकता कि इनमें कुछ मूर्तियाँ कितनी पुरानी हैं, किन्तु कला की दृष्टि से यह सभी मूर्तियाँ आधुनिक ही जान पड़ती हैं।

कलापूर्ण वातावरण

मन्दिर में उच्चकोटि का चित्रण है और उच्चकोटि की मूर्ति कला की सुन्दरता है। यह सब मिलकर हमारे हृदय की मनस्थिति पर गहरा प्रभाव डालते हैं। कला के पारखियों को मूर्ति कला में चतुराई दिखती है। इस मन्दिर की प्रभावशाली कला के साथ उस वातावरण को भी देखना चाहिये, जो मन्दिर में प्रवेश करने के साथ ही हमारी चेतना पर गहरा प्रभाव डालता है।

प्रश्नावली

१—देहली के लाल मन्दिर की विशेषता के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कीजिये।

२—इस मन्दिर की मूर्तियों के दर्शन से क्या प्रभाव दर्शक के हृदय पर पड़ता है?

३—देहली में लाल मन्दिर कहाँ है? इसे लाल मन्दिर क्यों कहते हैं? यदि आपको इस मन्दिर के निर्माता तथा निर्माण समय के सम्बन्ध में कुछ मालूम हो तो बताइये?

श्री वैरिस्टर चम्पतराय

वैरिस्टर चम्पतराय के प्रपितामह लाο निहालचन्दजी तथा पिता लाο चन्द्रामलजी देहली में कूचा परमानन्द में रहते थे। आपकी माता अति धर्म परायणा थीं। देवदर्शन करके भोजन करती थीं, अभक्ष्य भक्षण की त्यागी थीं, रात्रि को पानी भी नहीं पीती थीं। ऐसे ही लाο चन्द्रामल जी थे। एक बार आपने श्री महावीरजी के दर्शन बिना दही छोड़ दिया पर बीमार होने पर वैद्य ने दही का प्रयोग बतलाया किन्तु आपने प्राण जाने पर भी दही सेवन का विरोध किया।

आपके कई पुत्र और पुत्रियाँ हुई पर सब काल कवलित हुई, मात्र चम्पतराय चौथे पुत्र हुये माता पिता को सन्तोष हुआ। चन्द्रामल जी के और भाइयों के भी सन्तान न थी। अत तीन घरों की दुलारी सन्तान यही थी।

बालक चम्पतराय में धार्मिक संस्कार आरम्भ से ही हो चले थे। माता पिता सामायिक में बैठते तो आप भी आंख बन्द कर बैठ जाते। चम्पतराय की प्रारम्भिक शिक्षा काला महल के स्कूल से शुरू हुई। एक बार ८ १० लडको को पिछले पाठ याद न रहने पर मास्टर ने बहुत पीटा, उनमें चम्पतराय भी थे तबसे कई दिन तक वह स्कूल नहीं गये। अध्यापक ने आकर इनके पिता से कहा, वे बोले वहाँ तो मार सिखाई जाती है, मैं नहीं जाऊँगा। इनके पिता बोले तू कमजोर होगा, तो अध्यापक बोला, यह तो मानीटर है। उस दिन से अध्यापक ने मारना हो छोड़ दिया। आपके ऊपर से माता की छत्रछाया ६ वर्ष की आयु में ही उठ गई। आपके वंशज सोहनलाल बाकेलाल के कोई

सन्तान न थी, वे एक प्रतिष्ठित और धनिक व्यक्ति थे, उन्होंने नमणराय को गोद ले लिया। अब नमणराय ७ वर्ष को थे। आप अंग्रेजी स्कूल में पढ़ने लगे और ठाठ बाट से बाबू चम्पतराय प्रसिद्ध हुए।

आपका विवाह दिल्ली के प्रसिद्ध वकील रोशनलाल की लड़की के साथ हुआ। आपने सेंट स्टीफेन्स कालिज में शिक्षा प्राप्त की। पश्चात् इंग्लैण्ड बैरिस्टरी पढ़ने चले गये। वहाँ से सन् १८९७ में लौटे।

आप फौजी के मुकदमात और दीवानी मामले लेते थे। अब आपके पास बहुत मुकदमे आते थे, पर आप थोड़े लेते थे। काम मेहनत कर उन्हें पूरी सफलता दिलाते थे। थोड़े पैसा द्वारा ही दरिद्रों का काम करते थे। आपका जनता और वकीलों से बड़ा सद्व्यवहार रहता था।

एक बार हरदोई के डिस्ट्रिक्ट जज लिंडसे द्वारा छोटे वकील का अपमान करने पर आपने १७ माह तक कोर्ट का बहिष्कार रक्खा और अन्त में विजय पाकर चैन ली। अब आप Uncle Jain कहलाते थे।

आपका अपने ससुर के भाई श्री रंगीलालजी बैरिस्टर से अत्यधिक स्नेह था, उनके अकाल स्वर्गवास से आपको दुःख हुआ। आप विरक्त रहने लगे। तब आपकी स्वामी रामतीर्थ के अंग्रेजी ग्रन्थों के पढ़ने का अवसर मिला तो आपका झुकाव वेदान्त की ओर हो गया और वेदान्त की पुस्तक भी लिखने लगे पर कुछ शंकाएं रह जाती जिनका वेदान्त में उत्तर न था। एक बार १९१३ में आपका श्री देवकुमार आरा से परिचय हुआ। आपने उन शंकाओं का निवारण कर जैन धर्म पढ़ने को प्रेरित किया। अब आप पूर्णतः सच्चे जैन हो गये। आपके



स्वर्गीय वरिस्टर चम्पतराय जी

प्रकाट्य तर्कों मे और धम टिक नही पाते थे।

सन् १६२२ में आप लखनऊ दिगम्बर जैन महासभा अधिवेशन के सभापति बना दिये गये। आपने उस सुधारने के लिए अटूट श्रम किया। महासभा का द्रव्य जो किसी सज्जन पर स्का हुआ था और मिलने की आशा न थी, उसे निकलवाया और महासभा के पत्र 'जैन गजट' को सुधारना चाहा पर कुछ लोगों का यह सह्य न हुआ और आपका विरोध किया, तब आपने महासभा से अलग हो जनवरी १६२३ में दिगम्बर जैन परिषद् का जन्म दिया।

श्री सम्मेद शिखर तीर्थराज की रक्षा आपने अपने द्रव्य से लन्दन प्रिवी कौंसिल में जाकर की। आपने जैन लॉ का निर्माण किया जैन मुनियों के विहार पर प्रतिबन्ध हटवाया। कुछ्को के अत्याचारों को पार्लियामेंट में पहुँचाया। जैन पुरातत्व की खोज की तुलनात्मक नया साहित्य बनवाया। देश विदेशों में जैनधर्म पर व्याख्यान दिये। लन्दन में ऋषभ जैन लायब्रेरी कायम की। सदा समाज-सेवी तयार किये। विद्यार्थियों से सम्पर्क बढ़ाकर उन्हें योग्य बनाया। अन्त में आप अपना सर्वस्व जैनधर्म के लिये त्याग स्वर्गवासी हुये।

(पं० रवीन्द्रनाथ शास्त्री)

प्रश्नावली

१—श्री बरिस्टर चम्पतरायजी के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं ?

२—श्री बरिस्टर साहब ने जैनधर्म को कैसे अपनाया ?

३—श्री बरिस्टर साहब ने जैनधर्म और समाज की क्या क्या सेवायें कीं ?

४—बरिस्टर साहब के जीवन से आपको क्या शिक्षायें मिलती हैं ?

'वीर' महिमा

(श्री ज्योतिप्रसाद जी देवबन्द)

(१)

जन्म लियो कुण्डलपुरी में जब आये प्रभो,
भूमि हिल गई उसी क्षण सुर थान की।
चतुरनिकाय देव मध्य लोक माहिं आय,
सब विधि कीनी जाय मेरुगिर स्नान की॥
प्रभु को न्हवाय, वस्त्राभूषण सजाय तथा,
फिर घर लाय बहु कीरति बखान की।
सुर गाय उमगाय कोउ मृदंग बजाय,
सहस बलि जाय श्री "वीर" भगवान् की॥

(२)

क्षणथाई जान प्रभु भोग भव तज दीने,
मान प्रियकारणी की नहीं तन प्रान की॥
तपस्या धारी मार मोह कर्मों से प्रीति तोरी,
द्वादश बरस माहिं ज्योति जगी ज्ञान की।
सुर मनुजों ने आय भावन से पूजा उसे
जिसने कुमति मार सुमति प्रदान की॥
मुदित हो मनमाहिं सब बार जय कहो,
शुद्ध बुद्ध गुण खानि 'वीर' भगवान् की।

(३)

कुमति निकन्द होय महामोह मंद होय,
जगमग बुद्धि सुविवेक भानवान की॥

नीति को हराव होय विनय का बढाव होय,
उपजै उछाह बढा हिय हरसान को ॥
धर्म को प्रकाश होय दुर्गति को नाश होय
बरतै समाधि ज्यों पियूष रस पान की।
ताप परिपूर होय दोष दृष्टि दूर होय,
दर्शन की महिमा है 'वीर भगवान् की ॥

प्रश्नावली

१—इस कविता के पहिले छन्द में कवि ने किस दृश्य का वर्णन किया है ?

२—वीर प्रभु के दर्शन की महिमा का जिस छन्द में वर्णन किया गया है वह कण्ठाग्र सुनाइये ?

३—भगवान् महावीर ने कितने वर्ष तपस्या की और उस तपस्या के फलस्वरूप उनको क्या सिद्धि हुई ?



ईश्वर और सृष्टि

[प्रा० पुरुषोत्तमचन्द जैन शास्त्री एम० ए०, एम० ओ० एल०]

जैन धर्म वैदिक धर्म के समान ईश्वर को अनन्त शक्ति वाला, सच्चिदानन्द मय सर्वज्ञ और अविनाशी तो मानता है किन्तु उसको जगत का कर्त्ता और नियन्ता नहीं मानता है। जैन दर्शन आत्मा को अनादि मानता है। जिस प्रकार वेदान्त दर्शन में अविद्या के आवरण के दूर होने ही जीवात्मा ब्रह्मरूप बन जाता है, इसी प्रकार जैन दर्शन के अनुसार जीवात्मा से कर्म का आवरण दूर होते ही वह ईश्वररूप हो जाता है। आत्मा राग द्वेषादि से लिप्त होने के कारण अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाता है और अपने भिन्न भिन्न कर्मों के परिणाम स्वरूप अनन्तानन्त योनियों मे जन्म लेता रहता है। जब उसकी विवेक शक्ति विकसित होजाती है वह अपने सत्कर्मों द्वारा राग द्वेष के संस्कारों को नष्ट कर डालता है और कर्म बन्धनों से मुक्त हो जाता है। वह अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान लेता है और फिर वही मुक्तात्मा सर्वज्ञ, आनन्द स्वरूप और सर्वशक्तिमान होकर परमात्म पद को प्राप्त होता है। जैन दर्शन के अनुसार ईश्वर नामी स्वतन्त्र रूप से कोई शक्ति नहीं है, किन्तु ईश्वर के समग्र गुण जीवमात्र मे रहते हैं। इसलिए जैन सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक जीव में ईश्वरत्व पद प्राप्त करने की शक्ति विद्यमान है। यदि जीव कर्मों के आवरण में दबी हुई उस शक्ति का विकास कर ले तो वह स्वयं ईश्वर बन जाता है। इस प्रकार जैनधर्म ईश्वरतत्व का वैदिक धर्म के समान कोई भिन्न स्थान

नही देता है किन्तु ईश्वर तत्व की मान्यता रखता है और उसकी उपासना को भी मानता है। जो जो आत्माये कर्म बन्धनो से मुक्त हो जाती हैं वे सभी समान रूप से ईश्वर पद को प्राप्त होती हैं। अविद्या या कर्म के आवरण के दूर होने पर जीवात्मा ही ब्रह्म या ईश्वर बन जाता है। इस विषय मे वेदान्त और जैन-दर्शन दोनो सहमत हैं।

ऊपर बता चुके है कि जैन धर्म ईश्वर को ससार का रचयिता और शास्वत नही मानता है। जो लोग ऐसा मानते हैं उनके प्रमाण और युक्तियें जैन दृष्टि से सारगर्भित नही हैं। ईश्वर को ससार का कर्ता और शास्वत मानने वाले कुछ विद्वानो का कहना है कि केवल ईश्वर ही शास्वत और अनादि है, उसके बिना ससार की कोई वस्तु अनादि नही। इनमे से भी कुछ लोगो का तो कहना है कि कोई चीज नही था केवल ईश्वर था। ईश्वर ने नही से या अभाव से ही सारे ससार की रचना कर डाली। दूसरे लोग कहते हैं कि ईश्वर ने अपने अन्दर से ही ससार को उत्पन्न किया या बनाया। जैन धर्मानुसार यह दोनो ही मन्तव्य निःसार हैं। प्रकृति के अध्ययन से हम पता चलता है कि ससार का कोई भी पदार्थ अभाव से उत्पन्न नहीं होता। प्रत्येक पदार्थ की कुछ पूर्वावस्था अवश्य होती है और किसी भी पदार्थ का सर्वथा अभाव नही होता। ससार मे हमे कोई उदाहरण ऐसा नही मिलता, जहाँ अभाव से किसी वस्तु की उत्पत्ति होती हो अत यह नही माना जा सकता कि ईश्वर ने ससार को अभाव से पैदा किया।

जो लोग यह कहते है कि ईश्वर ने अपने मे से ही विश्व की रचना की उनकी मान्यता भी ठीक नही जँचती। ईश्वर सर्वज्ञ और पूर्ण है, इस सत्य को सब स्वीकार करते हैं। उस सर्वज्ञ और पूर्ण ईश्वर से ... यह ससार अल्पज्ञ और अपूर्ण कैसे हो

सकता है। यदि ऐसा मान लिया जाय तो ईश्वर में भी अल्पज्ञता और अपूर्णता के दोष आ जाते हैं। फिर संसार का तो बहुत बड़ा भाग जड़ भी है सर्वज्ञ चेतन भगवान से जड़ की उत्पत्ति किस प्रकार हो सकती है? इसके अतिरिक्त सृष्टि की आदि में जब ईश्वर ने सब आत्माओं को अपने में से निकाला तो उस समय सब आत्मायें ईश्वर में मिली होने के कारण सब प्रकार के कर्म बन्धनों से मुक्त थीं और इस कारण शुद्ध थीं, फिर उन सब आत्माओं को किस दोष या गुण के कारण भिन्न भिन्न ऊँची व नीच योनियों में जाने के लिये बाध्य किया गया। इन प्रश्नों का कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिलता अतः यह सिद्ध है कि ईश्वर ने संसार की रचना अपने में से नहीं की।

इसके अतिरिक्त ईश्वर पूर्ण है और जहां पूर्णता होती है वहाँ किसी वस्तु की भी कमी नहीं हो सकती। यह तो पूर्णता शब्द से ही स्पष्ट है। इच्छा वहां पैदा होती है जहाँ किसी वस्तु की कमी हो। ईश्वर ने जब संसार को रचा तो उसने रचने की इच्छा अवश्य की होगी, क्योंकि बिना इच्छा के संसार की रचना हो नहीं सकती। जब इच्छा हो गई तो ईश्वर में अपूर्णता आ जाती है। अतः यदि ईश्वर को संसार का रचयिता मानें तो वह पूर्ण नहीं कहला सकेगा।

जब हम देखते हैं कि संसार अनेक प्रकार की भयानक महामारी आदि व्याधियों, भूकम्प, अतिवृष्टि और अनावृष्टि आदि प्राकृतिक प्रकोपों से होने वाली अकाल मृत्यु और अन्य महायुद्ध आदि अनेक भयानक आपत्तियों से भरा पड़ा है। सुख का अंश कम है, किन्तु दुख से पीड़ित प्राणियों का क्रन्दन चारों ओर सुनाई देता है। क्या सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान ईश्वर ने ऐसे संसार को उत्पन्न करना ही पसन्द किया? क्या वह सर्वशक्तिमान होते हुए

अपनी शक्ति से ऐसे संसार को उत्पन्न नहीं कर सकता था, जो सुख, शान्ति और आनन्द से परिपूर्ण होता ? ऐसी स्थिति में उसको भी नियन्त्रण करने की परेशानी नहीं उठानी पड़ती। सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान ईश्वर ने पहले तो संसार को अपूर्ण और शक्ति-रहित बनाया और फिर उसके लिए पूर्णता तक पहुँचाने के लिये नियम और धर्म बनाये। कोई साधारण बुद्धि रखने वाला व्यक्ति भी जान बूझकर किसी वस्तु को पहले बुरी नहीं बनाता कि बाद में उसका सुधार करना पड़े। अतः वे सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान ईश्वर ने यदि इस संसार को बनाया होता तो अवश्य ही यह पहले से ही पूर्ण और समर्थ होता।

कुछ विद्वानों का कथन है कि ईश्वर ने ही संसार को रचा है और इस कारण वह संसार का जनक या पिता है। संसार में जो लोग दुखी, रोगी, शोकाकुल और भूकम्पादि अकाल मृत्यु के ग्रास बनते हैं वह सब उनके पूर्व भव या इस भव में किये कर्मों का फल है इसका भोग टल नहीं सकता। जिस प्रकार पिता सद्गुण वाले पुत्र को पुरस्कार देता है और दुष्ट कर्म करने वाले को अनुरूप दण्ड देता है इसी प्रकार ईश्वर भिन्न भिन्न अच्छे या बुरे कर्मों के अनुसार जीवों को दण्ड देता है। सारे संसार का शासन और नियन्त्रण वही करता है। यह मान्यता भी युक्ति की तराजू पर ठीक नहीं उतरती। सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान ईश्वर जैसा चाहता वैसा संसार बना सकता था। उसने जीवों को बुरा करने की शक्ति क्यों दी ? पहले उनको बुरा कर्म करने की शक्ति दी और जब वे उस शक्ति का प्रयोग करने लगे तो उनको दण्ड दिया। कोई भी पिता पहले अपने पुत्रों को बुरे कामों में प्रवृत्त कराये और फिर उन्हें दण्ड दे भला यह कोई बुद्धिमत्ता कही जा सकती [illegible]। पिता अपने पुत्रों में बुरा कर्म करने की प्रवृत्ति ही [illegible] देगा।

जैन मन्तव्य

जैन धर्मानुसार कर्म फल विधान के लिए नियन्ता की आवश्यकता नहीं मानी जाती। जैनधर्म की मान्यता है कि शुद्ध ज्ञान और जड़ वस्तु अनादिकाल से मिले हुए चले आते हैं। ये दोनों ही द्रव्य संसार के उपादान कारण हैं। आत्मा का वास्तविक स्वरूप एक ही होता है चाहे वह शुद्ध हो या पुद्गल से मिला हो। सूक्ष्म भौतिक शक्तियों के रूप में आत्मा जड़ वस्तुओं से मिला हुआ है और इसी कारण आत्मा में रागद्वेषादि भाव उत्पन्न होते हैं। ये विकार अच्छे या बुरे कर्मों के निमित्त कारण बनकर एक तरह के साधन बन जाते हैं, जिनके द्वारा कर्मों के परमाणु आकर्षित आत्मा से सदा बन्ध को प्राप्त होते रहते हैं। इस सम्बन्ध से एक प्रकार की शक्ति (कार्माण शक्ति) संचित हो जाती है जिसका जब उदय होता है तो आत्मा में सुख दुःख उत्पन्न होने लगते हैं। जब यह संचित शक्ति समाप्त हो जाती है तो जड़ वस्तु आत्मा से पृथक् हो जाती है या यों कहिये कि कर्म आत्मा से जुदा हो जाते हैं। अन्त में जब आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान लेता है तो यथायोग्य साधना के जुटाने पर सब ही बाह्य शक्तियां अर्थात् कर्मों की निर्जरा हो जाती है और आत्मा परमात्मा पद को प्राप्त हो जाता है।

"जैन धर्म की मान्यता तो यह है कि सृष्टि का कर्ता या नियन्ता कोई बाहरी सत्ता नहीं। मनुष्य स्वयं सिद्ध और अपने भाग्य का निर्माण करने वाला है। वह किसी की दया और सहायता का भिखारी नहीं, मनुष्य अपने ही चरित्र और तपोबल से परमात्मपद अर्थात् ऐश्वर्य की प्राप्ति कर सकता है। स्वावलम्बन और स्वातन्त्र्य मनुष्य में सहज हैं इसके लिये किसी के सामने आवेदन पत्र देने और हाथ पसारने की आवश्यकता नहीं।"

सृष्टि की उत्पत्ति

जन सिद्धान्त के अनुमार समार की रचना मनान और अनान दा वारण द्वारा हाती ह। दूसरे शब्दो म यह द्रव्या अथात् जीव या आत्मा पुद्गल, धम अधम आवाश और काल इन पट द्रव्या द्वारा होनी है। इनमें से एक वारण ता जसे जीव सनान अथात् दखन जानने वाला है चेतना लक्षण सयक्त है और शप पान वारण अनान अर्थात् जड हैं। इन छहा द्रव्या का समुदाय यह लाक है य छहा द्रव्य सना स हैं और सना वन रहेंग इसलिये यह लोक नि य है। द्र य परिणमन शीरा हैं इनकी पर्यायें बदलने की अपक्षा यह जगत अनित्य है। यह जगत कभी नया बना नही, न कभी इसका बि कुल लोप ही हागा। अवस्या से अवस्था तर होना रहा है और होता रहगा। इस प्रकार यह छहा द्रव्य अनादि काल से विद्यमान ह और रहग। किसी खास समय में इनके सयोग से समार की उत्पत्ति नही हुई किन्तु ससार अनादि है। इन ही छह द्रव्यो की भिन्न भिन्न परिवतनशील दशा और पर्यायो तथा पारस्परिक समाधान से ससार की सृष्टि होती है। यह जगत् अर्थात् ससार अनादि निधन है। न कोई इसका वर्ता है न कोई हर्ता है।

इन सब द्रव्यो का व्यापार एक दूसरे पर पडता रहता है इनम उत्पन्न होने, नाश होने और स्थिर रहने की शक्ति है। इसी शक्ति का सत्ता भा कहते हैं। यह सत्ता इन छह द्रव्या में ही रहती है जसा कि आप पहले भाग मे द्रव्य के पाठ म पढ चुके हैं। इस सत्ता का द्रव्या से नित्य सम्बन्ध है। इसमे यह स्पष्ट है कि ससार के उत्पन्न या नाश करने वाली शक्ति इन छह द्रव्या के अतगत ही विद्यमान है। समार से पृथक अन्य कोई शक्ति सत्ता व [illegible] द्रव्या के अन्तगत रहने वाली इस शक्ति

। जनधम ईश्वर नहीं मानता।

अब यहाँ प्रश्न होता है कि जैन सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर न तो ससार का कर्ता है और न जीवों के कर्म फल भुगतान वाला नियन्ता है तो फिर उसका ससार से सम्बन्ध ही क्या रहा ? जब वह ससार के कामों में और उनकी व्यवस्था में हस्तक्षेप नहीं कर सकता और न किसी को हानि या लाभ ही पहुँचा सकता है तो फिर ऐसे ईश्वर को मानने से, उसकी पूजा और उपासना करने से ससार का क्या लाभ ? उस ईश्वर की सर्वज्ञता और अनन्त शक्तिमत्ता से ससार को क्या फायदा ? जैन लोग जो मन्दिरों में देवालयों में जाकर भक्ति, पूजा उपासना, आराधना, ध्यान, चिंतवन आदि करते हैं फिर उससे क्या सिद्धि होती है ?

इस प्रश्न के उत्तर में जैन धर्म कहता है—प्रतिदिन के जीवन के अनुभव में हम देखते हैं कि जब हम किसी दुष्ट पुरुष को देख लेते हैं या उसका चिन्तन हो आता है तो हृदय में बुरे भाव उत्पन्न होने लगते हैं और दुष्ट की दुष्टता पर क्रोध आ जाता है। इसी प्रकार जब कभी किसी महात्मा या महापुरुष के हम दर्शन करते हैं या उसका चिन्तन करते हैं तो चित्त में बड़ी प्रसन्नता और शान्ति उपजती है। पवित्र विचार उत्पन्न होते हैं और संस्कार शुद्ध बनते हैं। विश्व में बड़े-बड़े महापुरुष, वीरों, विद्वानों और नेताओं के जो बुत बना कर यत्र तत्र चौराहों और पार्कों में रख गये हैं और जन्म दिवस महोत्सवों पर उनके गलों में हार तथा फूल मालाएं डाली जाती हैं, उसका प्रयोजन भी यही होता है कि लोग उनको देखकर वैसे महापुरुष, वीर, महात्मा या विद्वान् बनने का प्रयत्न करें। इसी प्रकार मन्दिर में भगवान् की प्रतिमा के दर्शन करने से तथा उनका स्मरण

चिन्तन करने से अन्तःकरण निर्मलता की ओर जाता है। आत्मा भगवान् के गुणों का अपनाने लगता है और राग द्वेषादि विकारों का त्यागने का प्रयत्न करने लगता है। आत्मा में विवेक शक्ति का विकास होने लगता है और आत्मा अपनी अशुद्धि के मूल कारण अज्ञान और मोह से छुटकारा पाता है। आत्मा की उन्नति प्रारम्भ होती है और वह पूर्णता की ओर बढ़ने लगता है। परमात्मा में जो गुण हैं वह आत्मा में भी है किन्तु रागद्वेषादि के कारण तथा कर्मावरण के निमित्त से छिपे हुए हैं। भगवान् के पूजन या चिन्तन से आत्मा उस पथ की ओर बढ़ने लगता है। जहाँ रागद्वेषादि का पर्दा आत्मा से दूर हो जाता है। भगवान् के निरन्तर अर्चन स्मरण से आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप को समझने लगता है अतएव आध्यात्मिक उन्नति और मानव जीवन के कल्याण के लिये भगवान् का पूजन, चिंतन, स्मरण और कीर्तन नितान्त आवश्यक है। पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार अपनी पुस्तक सिद्धिसोपान में लिखते हैं—

आवागमन विमुक्त हुए जिनको करना कुछ काम नहीं,
आत्मलीन, मल दोष हीन, जिनके विभाव का लेश नहीं।
राग द्वेष भय मुक्त निरंजन अजर अमर पद के स्वामी
नगन भूत पूर्ण विकसित सत् चिदानन्द जो निष्कामी ॥१॥
इस हुए अनन्त सिद्ध औ वर्तमान हैं सम्प्रति जो,
आगे होंगे सकल जगत में, विबुध जनों से संस्तुत जो।
उन सबको नत मस्तक हो मैं वन्दूँ तीनों काल सदा
स्वरूप की शीघ्र प्राप्ति का, इच्छुक होकर सहित मुदा ॥२॥
कारण, उनका जो स्वरूप है वही रूप सब अपना है,
उस ही तरह सुविकसित होगा, इसमें लेश न कहना है।
उनके चिन्तन-वन्दन से, निजरूप सामने आता है,
भली निज [illegible] दान या शान्ति प्रेम उपजाता है

प्रश्नावली

१—क्या ईश्वर सृष्टि का कर्ता है ? यदि नहीं तो सृष्टि की रचना कब, कैसे और किस के द्वारा हुई ? अपना उत्तर प्रमाण सहित दीजिये ?

२—क्या ईश्वर फल दाता है ? यदि नहीं तो उसकी उपासना फिर क्या किस अभिप्राय से की जाती है ?

३—जैनधर्मानुसार ईश्वर का क्या स्वरूप है ? जैन क्यों ईश्वर की और किस हेतु से उपासना करते हैं ?

४—क्या जैन नास्तिक हैं ?

५—वेदान्त तथा जैनधर्म में क्या समानता है और क्या असमानता है ?



स्वाध्याय

अधिकतर मनुष्य सम्पूर्ण जीवन सांसारिक ज्ञान प्राप्त करने में व्यतीत कर देते हैं। कुछ व्यक्ति विज्ञान के प्रकाण्ड वेत्ता होते हैं, कुछ इतिहास के कुछ अन्य शास्त्रों में पारङ्गत होते हैं। यदि उनसे पूछा जाय कि उनके जीवन का क्या उद्देश्य है उनके जीवन का क्या कार्यक्रम है तो वे कुछ भी उत्तर न दे सकेंगे। इसका कारण यह है कि वे आध्यात्मिक ग्रन्थों का अध्ययन नहीं करते। हममें से अधिक व्यक्तियों को यह भी ज्ञात नहीं है कि आत्मा क्या है? आत्मा परमात्मा का क्या सम्बन्ध है? जीवात्मा और शरीर का क्या सम्बन्ध है? पाप किसे कहते हैं? पुण्य किसे कहते हैं? हमारा जीवन संसार में दुखी क्यों है? अपने जीवन को हम सुखी किस प्रकार बना सकते हैं? ये सब महत्वपूर्ण प्रश्न हैं। इनका उत्तर किन्हीं का ज्ञान है। इन सब बातों को यदि हम समझना चाहते हैं और अपने मनुष्य जन्म को सफल और सार्थक बनाना चाहते हैं तो उसका एक ही उपाय है कि हम प्रतिदिन धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय करें। तत्वज्ञान प्राप्त करने के लिए स्वाध्याय ही सर्वोत्तम साधन है।

स्वाध्याय से बढ़कर कोई तप नहीं है। ध्यान में हमारा मन नहीं लगता। मन इतना चंचल है कि एक सैकिंड में हजारों मील चलता है। जो चिन्तन करने के योग्य नहीं है उसका चिन्तन करता है नाना प्रकार के विकल्प आते रहते हैं।

न्याय नीति पूर्वक उपार्जित शुद्ध द्रव्य नहीं, फिर देव गुरु का समागम भी नहीं मिल पाता। समय के अभाव का प्रत्येक मनुष्य वर्णन करता मिलता है। गुरुओं का साहचर्य भी प्राप्त होना कठिन हो रहा है। यदि सौभाग्य से कहीं कोई सच्चे गुरु मिल जाय तो उनके द्वारा की गई धर्म-चर्चा में मन लगना बड़ा मुश्किल होता है और भी कोई ऐसा साधन सुलभ प्राप्त नहीं जिसमें मन की प्रवृत्ति सद्ध्यान की ओर जा सके। ऐसी दशा में स्वाध्याय से बढ़कर कोई तप नहीं है। स्वाध्याय में बुद्धि कुछ का टिक जाता है। मन की चंचलता रुकती है। इसमें मन को भी कोई प्रतिबंध नहीं। मन्दिर हो अथवा अन्य कोई स्थान। प्रयत्न पूर्वक मन को एकाग्र कर सद्ग्रन्थों का अध्ययन करना, चर्चा करना, धर्मोपदेश देना यह सब स्वाध्याय है।

स्वाध्याय नियमपूर्वक और विनय पूर्वक करना चाहिए शास्त्र चौकी पर रखा हो उसकी ओर पैर न किए जाय। अशुद्ध अवस्था न हो भटका न हो। जो कुछ पढ़ा जाय अत्यन्त मनोयोग में और क्रम युक्त हो। इसी प्रकार शास्त्रोपदेश में अथवा एकान्त में उसका ठीक ठीक अर्थ किया जाय जिससे श्रोता पढ़ने मात्र से उसका भाव अपने हृदय में उतार सके। शास्त्र के उपदेश से अपने विचार पृथक रखा जाय। अश्रद्धा युक्त न पढ़ा जाय जहाँ कहीं जो कुछ समझ में न आवे वहाँ महात्माओं की ऋषियों के वाक्यों पर दृढ़ श्रद्धा पूर्वक विचार करना चाहिए अथवा विशेष ज्ञानवान् पुरुषों से शंका का समाधान कर लेना चाहिए। यदि फिर भी किसी शंका का समाधान न हो तो अपनी अल्पज्ञता समझ धैर्य रखे। बाल की खाल न निकाले, वास्तविक भाव समझने का प्रयत्न करे भाषा अत्यन्त सरल हो, अलंकारों के जाल में उलझ कर न रह जाय। भाषा भावों को ग्रहण करने में

साधन है, साध्य नहीं। धर्म प्रचार के लिए सदैव सुगम भाषा का ही प्रयोग करना उचित है। भगवान् तीर्थङ्कर की वाणी संस्कृत न होकर उस समय की सब साधारण की भाषा अर्ध मागधी थी, जिसे सब समझ लेते थे।

स्वाध्याय समय पर करना चाहिए। शास्त्र स्वाध्याय करते समय अत्यन्त विनयवान् होना चाहिए। देव, शास्त्र, गुरु के प्रति नम्र भाव रखने चाहिए। जो कुछ पढ़ा जाय उसे ध्यान पूर्वक पढ़ना चाहिए और सांसारिक वासनाओं का परित्याग कर देना चाहिए।

स्वाध्याय में आदर भाव हो गुरु का नाम नहीं छिपाना चाहिए। स्वाध्याय निराकुलता पूर्वक अध्ययन पठन पाठन को कहते हैं। ऐसा करने से आत्म-कल्याण होता है पर-कल्याण होता है शान्ति होती है।

स्वाध्याय से ही हिताहित का, मोक्षमार्ग का आत्मा के भेद का ज्ञान होता है। यह वह प्रकाश है जिसके आधार से हम मोक्ष भी प्राप्त कर सकते हैं।

प्रश्नावली

(१) स्वाध्याय किसे कहते हैं?
(२) स्वाध्याय की वर्तमान काल में क्या उपयोगिता है?
(३) स्वाध्याय कितने प्रकार से किया जाता है?
(४) स्वाध्याय की आठ विधियाँ कौन सी हैं?
(५) जिन साधुओं के दानोपदेश से क्या लाभ है?
(६) स्वाध्याय कब, कैसे, कहाँ और क्या करना चाहिए?
(७) कैसे शास्त्रों का स्वाध्याय हितकारी है?
(८) स्वाध्याय के समय वक्ता अपना अभिप्राय प्रकट कर सकता है?

स्वर्गीय पंडित श्री गोपालदास जी बरैया



पंडितजी का जन्म विक्रम सम्वत् १९२३ के चैत्र मास में भारत के सुप्रसिद्ध नगर आगरे में हुआ था। आपके पिताजी का नाम लक्ष्मणदास जी था। आपकी जाति "बरैया" और गोत्र "एढ़िया" था। पण्डितजी के बाल्यकाल के विषय में कुछ विशेष पता नहीं है केवल इतना मालूम है कि आपके पिताजी की मृत्यु बचपन में ही हो गई थी। अपनी माताजी की कृपा से ही पंडितजी मिडिल तक हिन्दी और छठी, सातवीं कक्षा तक अंग्रेजी भाषा पढ़ गये थे, उस समय धर्म की ओर आपकी जरा भी रुचि नहीं थी। गलना बुरता मौज मजे उड़ाना, तम्बाकू सिगरेट पीना, चार और चौरोंके आदि गाना आपके दैनिक कार्य थे।

१६ वर्ष की अवस्था में आपने अजमेर के रेलवे दफ्तर में पन्द्रह रुपये मासिक पर नौकरी करली, उस समय आपका जैनधर्म से इतना भी प्रेम नहीं था कि कम से कम जिन-दर्शन ता प्रतिदिन कर लिया करें। एक बार अजमेर के जैन मंदिर में पं० मोहनलाल जी नाम के एक जैन विद्वान् से आपका परिचय हो गया, उनकी संगति में आपका चित्त जिन धर्म की ओर आकर्षित हुआ और जनधर्म के ग्रन्थों का स्वाध्याय करने लगे। अजमेर में आप छः सात वर्ष तक रहे, इस बीच में आपका अध्ययन बराबर जारी रहा। संस्कृत का ज्ञान भी आपको यहीं ही प्राप्त हुआ। यहाँ की जैन पाठशाला में ही आपने "लघु कौमुदी" "जैनेन्द्र व्याकरण" का कुछ अंश और 'न्याय-

दीपिका" ये तीन ग्रन्थ पढ़े। 'गोमट्टसार' का अध्ययन भी आपने उसी समय शुरू कर दिया था। अजमेर मे रहने से वहाँ के सुप्रसिद्ध (सातीपन निवासी) विद्वान् प० मथुरादास जी से भी आपका बहुत मेल जाल हो गया था।

स० १९४८ से १९५७ तक पडितजी बम्बई में रहे। इस बीच में आप वहाँ नौकरी, एजन्सी, दलाली, दुकानदारी आदि का काम करते रहे। सम्वत् १९५८ में पडितजी ने बम्बई निवासी सेठ नाथारगजी गाधी के फर्म के मालिक सेठ रामचन्द्र नाथाजी के साझे में मोरेना मे आढ़त की दुकान खोलली, यह काम कोई चार वर्ष तक किया इसके बाद दो वर्ष के लिये शोलापुर चले गये वहाँ से फिर मोरेना आकर अपना कारोबार करते रहे।

पडितजी के सार्वजनिक जीवन का प्रारम्भ बम्बई से होता है। बम्बई मे पडित धन्नालाल जी नाम के प्रसिद्ध विद्वान् से आपकी बड़ी मित्रता थी। लोग इन दोनो को 'दो शरीर एक प्राण' कहा करते थे। प० धन्नालाल जी और प० गोपालदास जी के उद्योग से ही मार्गशीर्ष शुक्ला १४ स० १९४८ को बम्बई में एक 'दि० जैन सभा' की स्थापना हुई। प० धन्नालाल जी आपके प्रत्येक कार्य मे प्रधान सहायक थे। स० १९५० के श्री जम्बूस्वामी के मेले में बम्बई सभा ने आपको मथुरा भेजा और आपके उद्योग से वहाँ पर भारतवर्षीय दि० जैन महासभा का काम शुरू हुआ। महासभा के महाविद्यालय के प्रारम्भ का काम आपके द्वारा होता रहा। लगभग स० १९५३ मे भारतवर्षीय दि० जैन परीक्षालय स्थापित हुआ और उसका काम आपने बड़ी कुशलता के साथ सम्पादन किया। स० १९५६ मे आपने दि० जैन सभा बम्बई की ओर से "जैनमित्र" नाम निकालना ~ ॆ। स० १९६५ के अठारहवे

पंडितजी इसके सम्पादक रहे, यह पत्र अब तक बराबर चालू है। जाति और धर्म की अपनी योग्यतानुसार अच्छी सेवा कर रहा है। बम्बई प्रांतिक सभा के मन्त्री का काम भी पंडितजी आठ दस वर्ष तक बराबर करते रहे। इस सभा के द्वारा संस्कृत विद्यालय, बम्बई परीक्षालय, तीर्थ क्षेत्र उपदेशक भण्डार आदि के बहुत ही उपयोगी कार्य होते रहे हैं। ये सब पंडित जी की ही निर्मल, पवित्र भावनाओं तथा उनके अटूट परिश्रम का फल है।

पंडितजी ने जैन सिद्धान्त का अध्ययन करने के लिये एक पाठशाला और छात्रालय की स्थापना की यही पाठशाला आज जैन समाज में श्री गोपालदास जैन सिद्धान्त विद्यालय मोरेना के नाम से प्रसिद्ध है। इस विद्यालय से पंडितजी को बहुत मोह होगया था, इस ही वह अपना सर्वस्व समझते थे। पंडितजी बड़े ही स्वात्माभिमानी थे। किसी से भी एक पैसे तक की याचना करना उनके स्वभाव के विरुद्ध था। शुरू शुरू में पंडित जी विद्यालय के लिये सभाओं में सहायता माँगने के कट्टर विरोधी थे। परन्तु पीछे आकर सेवा भाव तथा विद्या प्रचार के भावों के सामने वह स्वाभिमान विद्यालय के प्रेम की धारा में गल गया और उसके लिये 'भिक्षा दीजिये' कहने में भी उन्हें संकोच नहीं होने लगा।

यद्यपि पंडितजी की पठित विद्या बहुत ही थोड़ी थी, तद्यपि वे उच्चकोटि के धुरन्धर विद्वान् पंडित थे। आपने अपने स्वावलम्बन, शीलता और सतत् अध्यवसाय से पांडित्य प्राप्त किया था। पंडित जी जीवन भर विद्यार्थी रहे, उनका पांडित्य असामान्य था, वे न्याय और धर्म शास्त्र के बेजोड़ विद्वान् थे। इस बात को केवल जैन ही नहीं किन्तु कलकत्ते के बड़े-बड़े महामहोपाध्याय और तर्क वाचस्पति भी मानते थे। विक्रम की बीसवीं शताब्दी के आप सबसे बड़े जैन पंडित थे। आपकी

प्रतिभा और स्मरण शक्ति बड़ी विलक्षण थी।

पंडित जी की व्याख्यान दान शक्ति भी बहुत अच्छी थी जैन सिद्धान्त के सिवाय अन्य विषयों पर आप बहुत कम बोलते थे। आप लगातार दो दो तीन-तीन घण्टों तक व्याख्यान दे सकते थे। आपके व्याख्यान विद्वानों के ही काम के होते थे। शास्त्रार्थ करने की शक्ति भी आप में विलक्षण थी। अजमेर आदि के कई बड़े-बड़े शास्त्रार्थों में आपकी वास्तविक विजय हुई। बड़े से बड़ा विद्वान् भी आपके आगे बहुत समय तक न टिक सकता था। पंडित जी की लेखन शक्ति भी अच्छी थी। आपको जैन समाज का एक अच्छा लेखक कहा जा सकता है। आपके बनाये हुए तीन ग्रन्थ हैं। "जैन सिद्धान्त दर्पण" सुशीला उपन्यास और 'जैन सिद्धान्त प्रवेशिका' ये तीनों ही ग्रन्थ अच्छे महत्व के हैं। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त पंडित जी ने सब धर्म जैन भूगोल आदि कई छोटे छोटे ट्रैक्ट Tract भी लिखे हैं।

पंडित जी का चरित्र बड़ा ही उज्वल था। इस विषय में वे पंडित मण्डली में अद्वितीय थे। उन्होंने अपने चरित्र से यह दिखला दिया कि संसार में व्यापार सत्य और अचौर्य व्रत द्वारा सफल किया जा सकता है यद्यपि इन दो व्रतों के कारण आपको बार बार असफलतायें हुई, फिर भी आपने इन दो व्रतों का मरण पर्यन्त अखंड रीति से पालन किया। बड़ी बड़ी परीक्षाओं में भी आप इन व्रतों से नहीं डिगे। एक बार मंडी में आग लग गई और उसमें आपका तथा अन्य व्यापारियों का माल जल गया। माल का बीमा किया हुआ था। दूसरे लोगों ने बीमा कम्पनियों से इस समय खूब रुपये वसूल किए जितना का माल था उससे कहीं अधिक का बना दिया। पंडित जी से भी कहा गया आप भी इस समय अच्छी कमाई कर सकते हैं पर आपने एक कौड़ी भी अधिक नहीं ली। न्याय और डाकघर का यदि एक पैसा भी

अधिक आपके यहाँ भूल से आ जाता था, तो उसे लौटाये बिना आपको चैन नहीं पड़ती थी। रिश्वत देने का आपको त्याग था, इसके कारण आपको कभी बड़ा कष्ट उठाना पड़ता था पर आप उसे चुपचाप सहन कर लेते थे।

एक बार पंडित जी बम्बई से सपरिवार आगरे आये। घर आकर कई दिन बाद मार्ग व्यय आदि लिखा तो मालूम हुआ नौकर ने आपके तीन वर्ष के बच्चे का टिकट नहीं लिया। मालूम होने पर बड़ी आत्म ग्लानि हुई और आपने तत्काल स्टेशन मास्टर के पास जाकर क्षमा याचना की और टिकट का मूल्य उनकी मेज पर रख दिया। स्टेशन मास्टर ने बहुत समझाया कि अढ़ाई वर्ष से अधिक आयु वाले का टिकट लेने का नियम है तो, पर कौन इस नियम का पालन करता है? हम तो चार पाँच वर्ष के बालक को नजरअंदाज कर देते हैं। अपने आप टिकट का पैसा देने कोई हमारे पास आया हो हमें ऐसा मूर्ख कभी कोई नहीं मिला। आप बड़े भोले मालूम होते हैं, यह दाम आप उठा लीजिए सब यों ही चला करता है। परन्तु पंडित जी धूर्त और चालाक दुनिया के लिए सचमुच ही मूर्ख थे। आप दाम छोड़कर चले आये और बुद्धि पर जोर देने पर भी अपनी इस मूर्खता का रहस्य न समझ पाये और जीवन भर ऐसी मूर्खता करते रहे।

पंडित जी को कोई भी व्यसन नहीं था। खान पान की शुद्धता का आपको बहुत ख्याल था। खाने पीने की अनेक वस्तुएँ आपने छोड़ रक्खी थीं। इस विषय में आपका व्यवहार बिलकुल पुराने ढंग का था आपका रहन सहन का ढंग भी बहुत ही सादा था। कपड़े आप इतने साधारण पहनते थे, उनकी ओर आपका इतना कम ध्यान रहता था कि अनजान लोग आपको कठिनाई से पहचान सकते थे। धर्म कार्यों में आपने अपने जीवन में कभी भी एक पैसा तक नहीं लिया।

पडित जी मे गजब का उत्साह और गजब की काम करने की लग्न थी, वे धुन के पक्के थे। जो काम उनका जच जाता था उसे वे करके ही छोडते थे। आपको अपनी शक्तियो पर पूर्ण विश्वास था, इसी कारण आप कठिन से कठिन काय मे भी हाथ डालने मे नही झिझकते थे।

"वरयाजी" बडे निर्भीक थे जिस बात को आप सत्य समझते थे, उसको कह देने मे आपको जरा भी सकोच नही होता था। चापलूसी और खुशामद से आपको बडी घृणा थी। वे बडे बडे लखपतिया और करोडपतिया को उनके मु ह पर खरी खरी सुना दिया करते थे। खतौली के दस्सा और बीसा अग्रवालो के बीच मे जा पूजा के अधिकार के सम्बन्ध मे वाद मे केस चला था उसमे आपने निर्भीक होकर साक्षी दी थी कि दस्सो को पूजा का अधिकार है, जब जनता का विश्वास इसस बिल्कुल उल्टा है, परन्तु आपने इसकी जरा भी परवाह न की। इस विषय को लेकर सेठो ने और कुछ अन्य पडितो ने बडा ऊधम मचाया पडित जी को हर तरह से बदनाम करने की कोशिश की परन्तु अन्त मे जनता ने पडित जी के सत्य को समझ लिया और वह शान्त हो गई। निर्भीकता मे तथा सत्यार्थ का प्रतिपादन करने मे वे अद्वितीय थे।

पडित जी एक विचार शील विद्वान् थे। अपनी विचार शक्ति के बल से पदार्थ का स्वरूप इस ढग से बतलाते थे कि उसमे एक प्रकार की नूतनता जान पडती थी।

पडित जी की प्रतिष्ठा और सफलता का सबसे बडा कारण उनकी नि स्वार्थ सेवा या परोपकार शीलता का भाव था। इसी गुण से वे इस समय के सबसे बडे पडित कहला गए। जन समाज के लिए आपने अपने जीवन मे जो कुछ किया उसका बदला कभी नही चाहा। जैन धर्म की उन्नति हो, जैन सिद्धान्त का

केवल इसी भावना से आपने निरन्तर परिश्रम किया। आपकी निःस्वार्थ वृत्ति और ईमानदारी के कारण लोगों को आप पर दृढ़ विश्वास था। ग्वालियर राज्य की ओर से पंडित जी को मोरना में आनररी मजिस्ट्रेट का पद प्राप्त था। वहाँ के सम्प्रदाय ... और पंचायती बोर्ड के भी आप मेम्बर थे। बम्बई प्रान्तिक सभा ने आपको 'स्याद्वाद वारिधि' जैनतत्त्व प्रकाशनी सभा इटावा ने आपको 'वादीभ गज केसरी' और बनारस के गवर्नमेंट संस्कृत कालेज के पंडितों ने 'वाचस्पति' की पदवी प्रदान की थी।

जहाँ तक मालूम है पंडित जी को कुटुम्ब सम्बन्धी सुख कभी प्राप्त नहीं हुआ। आपकी स्त्री का स्वभाव बहुत ही कर्कश, क्रूर कठोर तथा जिद्दी था। वह पंडित जी को बहुत ही तंग किया करती थी। पंडित जी बहुत ही सहनशील थे। उनकी स्त्री जो कुछ भी उनको कहनी सुननी थी वे सब कुछ चुप चाप सहन कर लिया करते थे। पंडित जी बहुत सीधे और भोले थे, आपके भोलेपन से धूर्त लोग बहुधा लाभ उठाया करते थे।

पंडित जी को एकाग्रता का बड़ा अभ्यास था। कोलाहल और भराति के स्थान में वे घंटों तक विचारों में लीन रह सकते थे। आपकी स्मरण शक्ति भी बड़ी विलक्षण थी। वर्षों की बातों को वे अक्षरशः याद रख सकते थे। पंडित जी बड़े देश भक्त थे, विदेशी रीति रिवाजों से आपको बहुत अरुचि थी। जब तक कोई बहुत ही जरूरी काम नहीं पड़ता था तब तक आप अंग्रेजी भाषा का उपयोग नहीं करते थे। हिन्दी से आपको बड़ा ही प्रेम था।

अन्त के वर्षों में पंडित जी का शरीर बहुत ही शिथिल हो गया था। ऐसा होने पर भी आप अपने धार्मिक कार्यों तथा समाज-सेवा के करने से नहीं चूकते थे। पंडित जी का स्वर्गवास चैत्र सुदी ४

संवत् १९७४ में हुआ। आपकी मृत्यु से जैन समाज का एक ऐसा स्थान खाली होगया जिसकी पूर्ति आज तक नहीं हो पाई।

प्रश्नावली

(१) पं० गोपालदास जी का जन्म कब कहाँ और किस जाति में हुआ?

(२) पंडित जी का बाल्यकाल कैसे गुजरा?

(३) पंडित जी ने धर्म शिक्षा तथा लौकिक शिक्षा कहाँ तक कैसे प्राप्त की?

(४) पंडित गोपालदास जी की विद्वत्ता के सम्बन्ध में अपना मत प्रगट कीजिये?

(५) पंडित जी का आर्थिक जीवन और धार्मिक तथा सामाजिक जीवन कैसा रहा?

(६) जैन समाज के सम्बन्ध में पंडित जी की सेवाओं का कुछ वर्णन कीजिये?

(७) कहा जाता है कि पंडित जी एक बड़े निर्भीक तथा स्वतन्त्र विचार के विद्वान् थे क्या यह ठीक है। उत्तर सप्रमाण दीजिये?

(८) 'पंडित जी बड़े भोले और पक्के दयानतदार थे' इस वाक्य की सत्यता पंडित जी के जीवन की किसी भी घटना द्वारा सिद्ध कीजिये?

(९) पंडित जी की जीवनी से आपको क्या लाभ होता है?

(१०) पंडित जी का कौटुम्बिक जीवन कैसा रहा?

(११) पं० जी की सफलता तथा प्रतिष्ठा के मुख्य कारण क्या थे?

(१२) पंडित जी ने जो पुस्तकें लिखी उनके नाम बताइये? हिन्दी भाषा के प्रति पंडित जी का क्या भाव था?

तत्व

साधारण लोग भी वार्तालाप करते हुए यह कहते सुने जाते हैं कि "तत्व की बात यह है।" तत्व से उनका अभिप्राय सार से है। इसी प्रकार जैन धर्म के प्रवर्तकों ने धर्म के सात तत्व वर्णन किए हैं। इन सातों तत्वों का यदि श्रद्धान हो जाय और उन पर आचरण भी होने लगे तो मोक्षार्थी जीव मोक्ष मार्ग पर आरूढ़ हो सकता है। श्री पूज्य उमास्वामीजी महाराज ने तत्वार्थ सूत्र में बताया है—

"सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः"

तत्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् तत्व का जो अर्थ है उस पर श्रद्धान ही तो सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन की महिमा यदि कोटि-कोटि जिह्वा द्वारा गायी जाय, तो हम उसका पार नहीं पा सकते। वह सम्यग्दर्शन इन्हीं रत्न तत्वों के श्रद्धान से ही तो प्राप्त हो सकता है। ये तत्व मोक्षमार्ग के स्तम्भ हैं। उनका ज्ञान होने पर वस्तु स्वरूप का यथार्थ ज्ञान हमें हो जाता है और वस्तु स्वरूप का ज्ञान होते ही अन्धकार का पर्दा हमारी आत्मा से हट जाता है और हम अपने सच्चे स्वरूप का साक्षात्कार हो जाता है। इसलिए तत्वों का ज्ञान होना आवश्यक है।

इन सात तत्वों में से जीव अजीव आस्रव और बंध का स्वरूप आप पहले पढ़ चुके हैं। अब आगे संवर, निर्जरा और मोक्षतत्व का वर्णन करेंगे। संसारी जीव कर्मों के आस्रव और बंध के कारण ही चौरासी लाख योनियों में परिभ्रमण करता हुआ अनादि काल से नाना प्रकार के दुःखों को भोग रहा है। संसार परिभ्रमण से बचने के लिये जरूरी है कि जिन जिन

भावों से कर्मों का आस्रव और बंध होता है उन भावों से बच और उन कारणों को दूर कर। आस्रव का प्रतिपक्षी संवर है।

संवरतत्व—आस्रव का न होना अर्थात्—

आते हुये कर्मों को रोक देना संवर है। जैसे नाव में छिद्र होजाने पर उससे पानी भरने लगता है तो उस छिद्र में डाट लगाकर पानी को नाव में आने से रोक दिया जाता है। वैसे ही शुद्ध भावों के द्वारा कर्मों के आस्रव को रोक दिया जाता है।

संवर के भी दो भेद हैं। भावसंवर और द्रव्यसंवर। जिन परिणामों से कर्मों का पैदा होना बन्द होता है वह भाव संवर कहलाते हैं और उनके रुकने से जो पुद्गल परमाणु कर्मरूप नहीं होते उनको द्रव्य संवर कहते हैं।

अपनी शुद्ध आत्मा के ही भाव में मग्न रहना राग द्वेषादि विकल्पों से रहित होना ही कर्मों के न पैदा होने का कारण है। ऐसी शुद्ध अवस्था पैदा होने के कारण पंचमहाव्रत पंच समिति तीन गुप्ति, दशलक्षण धर्म, बारह भावना और बाईस परीषह जय के स्वरूप का बार-बार चिन्तवन करना तथा इनका धारण करना पालन करना है। अब आगे संवर के इन कारणों की पृथक् पृथक् व्याख्या की जाती है।

व्रत—निश्चय से राग-द्वेष आदिक विकल्पों से रहित होने का नाम व्रत है और इस अवस्था को प्राप्त करने वाले अहिंसा सत्य, अचौर्य ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह यह पाँच व्यवहार रूप कारण हैं। ये ही पाँच व्रत कहलाते हैं।

(क) कषाय से अपने व पर जीव के भाव प्राण या द्रव्य प्राण को पीड़ा न देना अहिंसा व्रत है।

(ख) कषाय से अपने को या पर को हानिकारक अप्रशस्त वचन

न बोलना सत्यव्रत है।

(ग) बगाय से बिना दिये हुए किसी के पदार्थ को ग्रहण न करना अचौर्य व्रत है।

(घ) पुरुष या स्त्री से मथुन का त्याग करना ब्रह्मचर्य व्रत है।

(ङ) अपनी निज आत्मा का पर पदार्थों से ममत्व भाव न होना अपरिग्रह है।

समिति—अपने शरीर से अन्य जीवों को पीड़ा न होने की इच्छा से यत्नाचार रूप प्रवृत्ति करना समिति है। कर्मों के बन्ध होने का रोकने की पूरी पूरी कोशिश त्यागी मुनि होकर सकते हैं, उनका सावधानता पूर्वक क्रिया करना भी कर्मों के आस्रव को रोकने में सहकारी कारण है। इसी को समिति कहते हैं। यह सावधानता पांच प्रकार की है। ईर्या, भाषा, एषणा, आदान निक्षेपण और उत्सर्ग।

(च) ईर्या समिति—दिन में चलना, रात्रि को न चलना ऐसे रास्ते पर चलना जिस पर मनुष्य और पशु आदिक चलते रहे हों। आहिस्ता आहिस्ता आगे चार हाथ प्रमाण भूमि को देखते हुए चलना, चलते हुए इधर उधर न देखना। सारांश यह है कि ऐसी सावधानता से चलना जिससे किसी जीव की हिंसा न हो।

(छ) भाषा समिति—हितमित वचन बोलना, अर्थात् प्राणीमात्र के हितकारी प्रमाणीक सन्देह रहित प्रिय वचन कहना भाषा समिति है।

(ज) एषणा समिति—दिन में एक बार निर्दोष शुद्ध आहार शास्त्रोक्त विधि से लेना एषणा समिति है।

(झ) आदान निक्षेपण समिति—शास्त्र, पीछी और कमण्डल

आदिक मुनि के पास होता है उसको व नेत्रों से देखकर और पीछी से शोध कर इस प्रकार रखना उठाना कि किसी जीव को बाधा न हो, आदान निक्षेपण समिति है।

(ङ) उत्सर्ग समिति—मल, मूत्र, कफ आदि को इस प्रकार सावधानता से डालना जिसमें जीवों को किसी प्रकार की बाधा न हो।

गुप्ति—गुप्ति तीन होती हैं—मन गुप्ति, वचन गुप्ति और काय गुप्ति। मन, वचन और काय के व्यापार को वश करना—काबू में लाना व रोकना गुप्ति कहलाता है।

दशलक्षण धर्म

धर्म—उत्तम क्षमा उत्तम मार्दव उत्तम आर्जव उत्तम शौच उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप उत्तम त्याग उत्तम आकिंचन्य उत्तम ब्रह्मचर्य ये दश धर्म हैं।

१—उत्तम क्षमा—दुष्ट लोगों के द्वारा तिरस्कार हास्य ताडन मारन आदि क्रोध की उत्पत्ति के कारण मिलने पर भी अपने में सामर्थ्य होते हुए भी परिणामों में क्रोध कषाय रूप मलिनता न लाने को उत्तम क्षमा कहते हैं।

२—उत्तम मार्दव—कुलमद जातिमद रूपमद, ज्ञानमद, धनमद बलमद तपमद प्रभुतामद इन आठ प्रकार के मद को न करने का नाम उत्तम मार्दव है—मानकषाय का अभाव होने पर ही मार्दव नामा गुण आत्मा में प्रकाशमान होता है।

३—उत्तम आर्जव—मन, वचन काय की सरलता का नाम आर्जव है। मायाचारी अर्थात् छल कपट के अभाव का नाम आर्जव है।

४—उत्तम शौच—अन्तरंग में लोभ कषाय के अभाव होने या में शरीर का पवित्र रखने को शौच कहते हैं।

५—उत्तम सत्य—मीठे हितमित, स्व परहितकारी सत्य वचन बोलना, अप्रिय, कटुक, कठोर, कु वचनो का त्याग करना उत्तम सत्य है।

६—उत्तम सयम—पाचो इन्द्रिय और मनका निरोध करना तथा छह काय के जीवो की रक्षा करना सयम कहलाता है। सयम दो प्रकार का होता है (अ) इन्द्रिय सयम (आ) प्राण सयम। इन्द्रियों के विषयों मे राग भाव के अभाव को इन्द्रिय सयम कहते है। छह काय के जीवो की रक्षा करना प्राण सयम हैं।

७—उत्तम तप—मान बडाई के भाव बिना, कर्मों के क्षय करने के निमित्त अनशन आदि बारह प्रकार के तप करने तथा इच्छाओ के निरोध करने का नाम तप है। यह तप दो प्रकार का होता है, अतरग तप तथा बाह्य तप। बाह्य तप अनशन, ऊनोदर, विविक्त शय्यासन, रसपरित्याग काय क्लेश और वृत्तिपरिसख्या भद रूप छह प्रकार का होता है और अतरग तप भी छह प्रकार का होता है—विनय, वैयावृत्य प्रायश्चित, व्युत्सर्ग, स्वाध्याय और ध्यान।

८—उत्तम त्याग—सर्वविभाव भावो का त्याग करना, निज चेतन स्वभाव म मग्न रहना निश्चय त्याग है। व्यवहार मे त्याग दान को कहते हैं, यह चार प्रकार का होता है, आहार दान औषधि दान और अभय दान तथा ज्ञान दान। यह दान पात्रो को भक्ति पूवक दिया जाता है और दीन दुखी जीवो को करुणा बुद्धि से दिया जाता है।

९—उत्तम आकिंचन्य—अन्तरग तथा बाह्य के २४ तथा शरीरादिक

में ममत्व भाव न रखने को आकिंचन्य कहते हैं। "अपने ज्ञान दर्शन मय स्वभाव बिना अन्य किंचित् मात्र भी हमारा नहीं है, मैं किसी अन्य द्रव्य का नहीं हूँ मेरा कोई अन्य द्रव्य नहीं है" ऐसे अनुभव को आकिंचन्य कहते हैं। आकिंचन्य परम वीतरागतापन को ही कहते हैं। आकिंचन्य धर्म मुख्यतया साधुजनों के ही होता है। गृहस्थ भी एकादेश इस धर्म का पालन करता है।

१०—उत्तम ब्रह्मचर्य—स्त्री समागम के त्याग तथा परमब्रह्म आत्मा में ही रमण करने को उत्तम ब्रह्मचर्य कहते हैं। ब्रह्मचर्य के बिना समस्त व्रत, तप, जप आदि निष्फल हैं।

यह दश लक्षण धर्म कोई परवस्तु नहीं है। आत्मा का निज स्वभाव है। क्रोधादिक कर्मजनित उपाधियों के दूर होने पर स्वयमेव ही इन दशलक्षण रूप आत्मा का निज स्वभाव प्रगट हो जाता है। यह दशलक्षण धर्म समस्त क्लेश [illegible] आत्मा का ही सत्य परिणमन है इसका लाभ सम्यक् [illegible] सम्यक् ज्ञान से ही होता है यह मो रमाग का [illegible] इस धर्म का पालन पूर्णतया किया करते हैं [illegible] इसका पालन अपनी योग्यतानुसार यथाशक्ति [illegible] चाहिये।

बारह भावनाएं

बार बार विचार करने का [illegible]

यह भावना। बारह हैं—अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व अशुचित्व आस्रव संवर निर्जरा लोक, बोधि दुर्लभ, धर्म।

१–अनित्य भावना—संसार, शरीर, पांच इन्द्रियों के विषय धन, यौवन आदि सब संसार में सदा स्थिर रहने वाले नहीं हैं। जैसे इन्द्र धनुष देखते देखते नष्ट हो जाता है, वैसे ही यह सब शरीर व भोग धन यौवन आदि भी क्षणभंगुर हैं। आत्मा नित्य है अखण्ड है ध्रुव है। ऐसा विचार बार बार करना और आत्म-कल्याण की भावना करना अनित्य भावना है।

२–अशरण भावना—ऐसा विचारना कि संसार में किसी को कोई शरण नहीं है। राजा महाराजा, भाई बन्धु कुटुम्ब परिवार मणि मन्त्र यन्त्र औषधि आदि कोई किसी को मृत्यु से बचाने वाला नहीं है। जैसे सिंह हिरण के बच्चे को पकड़ खींचता है वैसे ही काल सबको खींचता है। व्यवहार नय से तो इस जीव को अरहन्त सिद्ध साधु तथा केवली भगवान द्वारा प्रणीत जिन धर्म ही शरण है, निश्चय नय से इसे अपना शुद्ध चिदानन्द रूप आत्मा ही शरण है। इस प्रकार चिंतवन करना अशरण भावना है।

३–संसार भावना—ऐसा चिंतवन करना कि यह चतुर्गति रूप संसार है और इसमें कहीं भी सुख नहीं है। पंचम गति मोक्ष में ही अतीन्द्रिय निराबाध, अविनाशी निराकुलता रूप सुख की प्राप्ति इस जीवन से होती है। मुमुक्षु विचारता है कि ऐसे परिभ्रमण

से छूट कर मोक्ष का उपाय करना ही जीव का परम कर्त्तव्य है निरन्तर ऐसा चिन्तवन करने का नाम संसार भावना है।

४—एकत्व भावना—अपने शुभाशुभ कर्म के फल का यह जीव आप अकेला ही भोगता है। पुत्र, स्त्री आदि कोई भी दुख में साथी नहीं, ये सब अपने ही स्वार्थ के सगे हैं। आत्मा एक अकेला है। इस संसार में इस जीव का धर्म के अतिरिक्त और कोई हितु नहीं। निरन्तर इस प्रकार चिन्तवन करना एकत्व भावना है।

५—अन्यत्व भावना—ऐसा विचार करना कि यद्यपि इस शरीर से मेरा सम्बन्ध अनादि काल से चला आ रहा है तथापि ये सर्वथा भिन्न है मैं इससे भिन्न हूँ। नीर क्षीरवत् मेरा इसका सम्बन्ध है। जब यह शरीर ही मेरा नहीं है तो फिर स्त्री पुत्र धन-धान्य आदि सब चेतन अचेतन पदार्थ मेरे कैसे हो सकते हैं? वे सब पर हैं। इस प्रकार सकल पर पदार्थों को अपने से भिन्न चिन्तवन करना अपने अनन्त ज्ञान दर्शनमय शुद्ध चिदानन्द रूप आत्मा की प्राप्ति की भावना करना अन्यत्व भावना है।

६—अशुचि भावना—ऐसा विचारना कि यह शरीर अत्यन्त अपवित्र और घिनावना है। मांस, लोहू, हाड, चाम आदिक अपवित्र वस्तुओं का बना हुआ है। इसके सम्बन्ध से दूसरे अनेक पवित्र और सुगंधित पदार्थ भी बडे अपवित्र और घिनावने हो जाते हैं, इस

कारण यह शरीर ममत्व करने योग्य नहीं है। केवल विचार मात्र से भावना नहीं होगी। शरीर का अशुचि विचार करने से यदि परिणामों में वैराग्य भाव प्रगट होता है तो भावना सत्यार्थ कही जाती है अन्यथा नहीं। वैराग्य की दृढ़ता के लिये बार बार ऐसा चिन्तवन करना अशुचि भावना है।

७—आस्रव भावना—यह विचारना कि कर्मों के आस्रव के कारण ही ये जीव चतुर्गति रूप संसार मे परिभ्रमण करता है नाना प्रकार के दुःख भोगता है। आस्रव से कर्म बंध होता है। जो संसार का मूल कारण है। आस्रव दुखदाई है ऐसा जान आस्रव के कारण मिथ्यात्व, अविरति कषाय और योग उनका विचार करके उनसे बचने के उपाय करने का चिन्तवन करना और अपने परम वीतराग भाव में तल्लीन होना आस्रव भावना है।

८—संवर भावना—कर्मों के आस्रव का रोकने का नाम संवर है। संवर के कारण पंचमहाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्ति, दश लक्षण धर्म बारह भावना, बाईस परीषह पाँच प्रकार का चारित्र इनके स्वरूप का बार बार चितवन करना संवर भावना है। जो जीव पाँचों इन्द्रियों तथा मन को वश मे कर विषय कषायों से पराङ्मुख हो, राग द्वेषादि रहित अपना ज्ञान स्वभाव आत्मा मे प्रवृत्ति करता है उसके संवर भावना होती है।

९—निजरा भावना—पूव सचित कर्मों के उदय म आकर खिर जाने को निजरा कहते हैं। पचमहाव्रत पाच-समिति, पच इन्द्रिय विजय तथा बारह प्रकार का तप इत्यादिक कम निजरा के कारणा पर बार बार विचार करना और समभाव रूप से सुख मे लीन होकर बार बार अपने स्वरूप की उज्वलता का स्मरण करना निजरा भावना है।

१०—लोक भावना—ऊर्ध्व लोक, मध्यलोक, पाताल लोक इन तीन लोकों के स्वरूप का बार बार चितवन करना लोक भावना है। लोक भावना से ससार परिभ्रमण की दशा मालूम होती है और ससार परिभ्रमण से छूट मोक्ष प्राप्ति की अभिलाषा होती है।

११—बोधि दुलभ भावना—मनुष्य जन्म पाना बडा कठिन और दुलभ है मनुष्य जन्म पाकर इसको विषय भोगो मे खो देना और आत्म साधन न करना महामूर्खता है, एस अमूल्य मनुष्य जन्म को पाकर यथाथ ज्ञान की प्राप्ति करना चाहिए। यथाथ ज्ञान दुलभ है ऐसा दुलभ यथाथ ज्ञान महान् तपस्विया तथा मुनिया ने अपनी आत्मा मे ही साधन किया है। कहा है—

'धन कन कचन राज सुख, सब सुलभ कर जान।
दुलभ है ससार मे, एक यथारथ ज्ञान॥

इस प्रकार यथाथ ज्ञान की दुलभता का बार-बार चितवन करना बोधि दुलभ भावना है।

१२—धम भावना—धम के स्वरूप का चिन्तवन करना। धम ही लोक से सुखो को देने वाला है और धम

दुख से छुडा कर मोक्ष के सुख को देने व
है ऐसा विचार बार-बार करना, दश ल
धर्म तथा रत्नत्रय धर्म का चिन्तवन करना
भावना है। पच महाव्रत के धारी तथा स
और विषय भोगो से विरक्त मुनिराज वैराग
की प्राप्ति तथा दृढता के हेतु "वैराग्य की मा
इन बारह भावनाओ का चिन्तवन बार-
किया करते हैं। इनके चिन्तवन म समता
सुख प्रकाशमान होता है जैसे हवा के स
से अग्नि प्रज्वलित होती है। यह भाव
परमार्थ मार्ग के दिखाने वाली हैं, तत्वो
निर्णय कराने वाली हैं। सम्यक्त को उपज
वाली हैं, अशुभ ध्यान को नष्ट करने वाली
स्वावलम्बन का पाठ पढाने वाली हैं। स
और निर्जरा का मुख्य और प्रबल कारण
मन की शुद्धि तथा पवित्रता के हेतु इन बा
भावनाओ का भली भांति समझना और
पर चलना आवश्यक है।

परीषह जय

मुनिराज कर्मो की निर्जरा और काय क्लेश करने के लि
जो परीषह अर्थात् पीडा स्वय बिना किसी प्रकार के राग द्व
और कलुषता रहित समता भाव पूर्वक सहन करते हैं, इनक
परीषह जय कहते है। परीषह बाइस हैं:—

क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दश मशक, नग्न, अरति, स्त्री,
चर्या आसन, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृण
स्पर्श, मल, सत्कार, पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान, अदर्शन। इनका

वर्णन यहाँ संक्षेप से किया जाता है।

१—क्षुधा परीषह जय—भूख की बाधा होने पर उसके वश न होकर दुःख को समता भाव के साथ सहन कर लेने को कहते हैं।

२—तृषापरीषह जय—प्यास की तीव्र वेदना होने पर उससे खेद खिन्न न होकर उसे समता भाव पूर्वक सह लेना।

३—शीतपरीषह जय—शीत अर्थात् जाड़े के कष्ट को समता भाव पूर्वक सहन करना।

४—उष्णपरीषह जय—उष्णता अर्थात् गर्मी के सन्ताप को समता भाव पूर्वक सहन करना।

५—दंशमशक परीषह जय—डांस मच्छर बिच्छू कानखजूरे इत्यादि जीवों के काटने की वेदना को समता भाव पूर्वक सहन करना।

६—नग्नपरीषह जय—किसी प्रकार के भी वस्त्रादिक धारण न कर नग्न रहने को और नग्न रहते हुये भी निर्विकार बालक वत् लज्जा ग्लानि और मन से, वचन से, काय से किसी प्रकार के विकारों को न होने देने को कहते हैं।

७—अरतिपरीषह जय—संसार के इष्ट अनिष्ट पदार्थों में राग द्वेष न कर समता भाव धारण करना।

८—स्त्री-परीषह जय—किसी स्त्री को देखकर या ब्रह्मचर्य व्रत को भंग करने के लिये स्त्रियों द्वारा अनेक उपद्रव किये जाने पर भी चित्त में किसी प्रकार का भी विकार भाव नहीं लाना।

९—चर्यापरीषह जय—किसी प्रकार की सवारी की इच्छा न रखते हुये, मार्ग के खेद अर्थात् कष्ट को न गिनते हुये,

बिना किसी जीव को बाधा पहुँचाये परम अहिंसा भाव पूर्वक पृथ्वी को शोधते हुए गमन करना।

१०—आसनपरीषह जय—देर तक एक ही आसन से बैठ रहने का कष्ट समता पूर्वक सहन करना।

११—शय्यापरीषह जय—नुकीली, पथरीली, कंकरीली कांटों से भरी हुई भूमि पर शयन करने दुःख न मानना, खेद खिन्न न होना।

१२—आक्रोशपरीषह जय—दुष्ट मनुष्यों द्वारा कुवचन कहे जाने पर तथा गालियाँ दिये जाने पर भी किंचित्मात्र भी क्रोधित न होकर उत्तम क्षमा धारण करने को कहते हैं।

१३—वधपरीषह जय—दुष्ट मनुष्यों द्वारा वध बंधनादि के दिये जाने पर समता भाव धारण करना और उ दुःख को शान्ति पूर्वक सहन करने को कहते हैं।

१४—याचनापरीषह जय—किसी से किसी प्रकार की भ याचना न करने को कहते हैं। मुनिराज भूख-प्यास की बाधा हो जाने पर अथवा शरीर में रोग हो जाने पर भी किसी से भोजन पान औषधि आदि नह मांगते।

१५—अलाभपरीषह जय—अनेक उपवासों के बाद आहा आदि के लिये नगर में जाने पर भी यदि विधि पूर्व शुद्ध और प्रासुक आहार निर्दोष न मिले तो खे खिन्न न हो, परिणामों को कलुषित नहीं होने देते।

१६—रोगपरीषह जय—शरीर में अनेक रोग होजाने पर, रो जनित पीड़ा को समता भाव पूर्वक सहन करते अप

आप रोग दूर करने का उपाय न करना।

१७—तृणस्पर्शपरीषह जय—शरीर में शूल, काटा, कंकर, फाँस आदि के चुभ जाने पर दुखी न होने और आप उसके निकालने का उपाय न करने को कहते हैं।

१८—मलपरीषह जय—शरीर में पसीना आजाने अथवा धूल, मिट्टी लग जाने के कारण शरीर के महामलीन हो जाने पर स्नान आदि न करके चित्त निर्मल रखने को कहते हैं।

१९—सत्कार पुरस्कारपरीषह जय—किसी के आदर सत्कार अथवा विनय प्रणाम आदि न करने पर तथा किसी के द्वारा तिरस्कार किये जाने पर हर्ष विषाद न करके समता भाव धारण करने को कहते हैं।

२०—प्रज्ञापरीषह जय—अधिक विद्वान् अथवा चरित्रवान् हो जाने पर भी किसी प्रकार का भी मान या घमण्ड नहीं करने को कहते हैं।

२१—अज्ञानपरीषह जय—बहुत दिनों तक तपश्चरण करने पर भी अवधिज्ञान प्राप्ति न होने से अपने आप खेद करने का और ऐसी दशा में दूसरों से अपने प्रति अज्ञानी मूढ़ आदि मर्मभेदी वचन सुनकर दुखित न होने को कहते हैं।

२२—अदर्शनपरीषह जय—बहुत दिनों तक घोर तपश्चरण करने पर भी किसी प्रकार के फल की प्राप्ति न होने से सम्यक दर्शन को दूषित न करने को कहते हैं।

इन सब परीषहों से शरीर सम्बन्धी या मन सम्बन्धी जो अत्यन्त पीडा होती है उसे समता भाव पूर्वक सहन करने से

संवर होता है और पूर्व बद्ध कर्मों की निर्जरा होती है। मुनिराज तो इन परीषहों को पूर्णतया जय करते हैं, गृहस्थों के लिये भी इनका जय करना परम कर्त्तव्य है इन बाईस परीषहों में से जीव के एक समय एक साथ उन्नीस परीषह उदय में आ सकती हैं क्योंकि शीत उष्ण में से एक काल में शीत या उष्ण एक ही परीषह होगा और शय्या, चर्या, निषद्या इन तीनों में से भी एक काल में एक ही होगी। इस प्रकार एक समय में तीन परीषहों का अभाव होने के कारण उन्नीस परीषह ही एक समय में एक साथ उदय में आ सकती हैं।

इन बाईस परीषहों में से प्रज्ञा परीषह और अज्ञान परीषह ज्ञानावरणीय कर्म के उदय होने पर होती है। दर्शन मोहनीय के उदय से अदर्शन परीषह और अन्तराय के उदय से अलाभ परीषह होती है। चारित्र मोहनीय के उदय से नग्नता, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना और सत्कार पुरस्कार ये सात परीषह होती हैं। शेष ग्यारह परीषह क्षुधा, तृषा शीत, उष्ण, दंश मशक चर्या, शय्या, वध, रोग, तृण स्पर्श और मल ये वेदनीय कर्म के उदय होने पर होती है।

इन बाईस परिषहों का सहन करना परम संवर का कारण है, परीषहों के सहन करने से चित्त निश्चल हो जाता है, चित्त की निश्चलता से ध्यान की सिद्धि होती है। ध्यान से कर्मों की निर्जरा होती है। मोक्ष पद की प्राप्ति होती है। इसलिये मोक्षार्थी मुनि के लिये इन बाईस परीषहों का सहन करना आवश्यक है।

चारित्र

आत्मस्वरूप में स्थित होना चारित्र है, उसके पांच भेद हैं। '१—सामायिक चारित्र—प्राणीमात्र में समता भाव रखना शुभ अशुभ संकल्पों के त्याग रूप समाधि धारण करना

तथा रागद्वेष का त्याग करना और सुख दुःख में मध्यस्थ रहना। यह सामायिक चारित्र है।

२—छेदोपस्थापना चारित्र—उपर्युक्त सामायिक चारित्र से डिग जाने पर अपने को फिर से शुद्ध आत्मा के अनुभव में लगाना तथा व्रत आदि में व्याघात हो जाने पर प्रायश्चित आदि लेकर फिर सावधान होना छेदोपस्थापना चारित्र है।

३—परिहारविशुद्धि चारित्र—रागद्वेष आदिक विकल्पों को त्याग कर अधिकता के साथ आत्म शुद्धि करना परिहार विशुद्धि चारित्र है।

४—सूक्ष्मसांपराय चारित्र—अपनी आत्मा को कषाय से रहित करते करते सूक्ष्म लोभ कषाय नाम मात्र को रह जावे उसको सूक्ष्म सांपराय कहते हैं। उस नाम-मात्र सूक्ष्म लोभ को भी दूर करने के लिये प्रयत्न करना सूक्ष्म सांपराय चारित्र है।

५—यथाख्यात चारित्र—पूर्ण वीतराग चारित्र। कषाय रहित जैसा निष्कम्प आत्मा का शुद्ध स्वभाव है वैसा होकर उसमें मग्न होना यथाख्यात चारित्र है।

इस प्रकार संवर के मुख्य मुख्य कारणों का वर्णन किया गया। इससे तात्पर्य यह है कि जितना जितना शुद्ध आत्मिक भाव का मनन व अनुभव बढ़ता जाता है उतना उतना ही नवीन कर्मों का संवर और पूर्व बद्ध कर्मों का क्षय होता चला जाता है। इस प्रकार जो ज्ञानी आत्मा संवर के कारणों को विचार कर अपने को सब विकल्प रहित शुद्ध भाव पूर्वक निज शुद्ध चिदानन्द स्वरूप में लीन रखता है, और रागद्वेष नहीं करता है उसके संवर होता है।

दोहा—"गुप्ति समिति वृष भावना, जयन परीषहसार।
चारित धारे सग तज, सो मुनि सवर धार॥
(जयचन्द)

निर्जरा तत्व

आत्मा के साथ बधे हुए कर्मों का थोडा थोडा करके जुदा होना निर्जरा है। जसे नाव में छिद्र के द्वारा आकर जो पानी भर गया उसको थोडा थोडा करके बाहर निकाल दिया जावे वसे ही आत्मा के साथ बधे हुए कर्मों को धीरे धीरे तपश्चरण द्वारा आत्मा से जुदा कर दिया जाता है। आत्मा के जिन परिणाम से पुद्गल कर्म फल देकर नष्ट हो जाते हैं वह भाव निर्जरा है। समय पाकर तपश्चरण द्वारा कर्म रूप पुद्गलो का आत्मा से झड जाना द्रव्य निर्जरा है।

निर्जरा दो प्रकार की होती है—सविपाक निर्जरा और अविपाक निर्जरा।

सविपाकनिर्जरा—फल देकर अपने समय पर कर्म का आत्मा से जुदा होना सविपाक निर्जरा है यह निर्जरा तो सब ही ससारी प्राणियो के होती है।

अविपाक निर्जरा—स्थिति पूर्ण होने से पहिले ही तपश्चरण द्वारा कर्मों का नष्ट कर देना अविपाक निर्जरा है। इसका मुख्य कारण आत्मा का शुद्ध वीतराग भाव है, यह भाव शुद्ध आत्मीक ध्यान से प्राप्त होता है। इस निर्जरा के लिये बारह प्रकार तपका अभ्यास आवश्यक है उनमे मुख्य तप ध्यान है।

बारह तप

१—अनशन—खाद्य स्वाद्य, लेह्य, पेय इन चार प्रकार के आहार का त्याग कर दिन रात धर्म ध्यान मे समय व्यतीत करना।

२—अवमौदर्य—पूरा भरपेट भोजन न करके यथा सम्भव भूख से कम भोजन करना।

३—वृत्ति परिसंख्यान—भिक्षा के लिये जाते समय इस प्रकार की कोई कड़ी प्रतिज्ञा करनी कि अमुक प्रकार का आहार मिलेगा, अमुक दिशा में अमुक मोहल्ले में मिलेगा, अथवा अमुक गली में मिलेगा तो लूंगा, अन्यथा नहीं। यदि योग्य भिक्षा विधि न बने तो वापस वन में जाकर समता भाव के साथ उपवास आदि करना। इस तप के करने से आशा, तृष्णा का नाश होता है।

४—रस परित्याग—दूध, दही, घी, मीठा लवण, तेल इन छह रसों में से एक या अधिक का त्याग कर देना इन्द्रिय दमन, आलस्य, परिहार तथा स्वाध्याय में आनन्द प्राप्ति के अर्थ यह तप जरूरी है।

५—विविक्त शय्यासन—जीवों की रक्षार्थ प्रासुक क्षेत्र में ब्रह्मचर्य पालन करना तथा स्वाध्याय, ध्यानाध्ययन आदिक क्रियाओं का निर्विघ्नता पूर्वक साधन करने के लिये पर्वत, गुफा, वस्तिका, स्मशान भूमि वन खण्डहर आदिक एकान्त स्थानों में सोने बैठने का नाम विविक्त शय्यासन है।

६—कायक्लेश—शरीर का सुखियापना मिटाने के लिए निर्जन स्थानों में बैठकर या खड़े होकर ध्यान लगाना—जैसे कभी धूप में आतापन योग धारण करना।

७—प्रायश्चित—अपने व्रतों में कोई अतिचार होने पर उसका यथोचित दण्ड लेकर अपने को शुद्ध करना।

८—विनय—सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र तथा

गम्यक् तप इन चारों का और इनके धारण करने वालों का आदर सत्कार करना।

९—वैयावृत्य—पूज्य पुरुषों की भक्ति पूर्वक सेवा चाकरी तथा टहल करना।

१०—स्वाध्याय—शास्त्रों का पढ़ना, विचारना, मनन करना, कण्ठस्थ करना और धर्मोपदेश देना।

११—व्युत्सर्ग—शरीर में ममत्व न करना, इन्द्रिय भोगों में तथा अन्य पर पदार्थों में निर्मोह ममत्व का त्यागना।

१२—ध्यान—समस्त चिन्ताओं का निरोध करके धर्म में या आत्म चिन्तवन में एकाग्र होने का नाम ध्यान है।

इन बारह तपों का आराधन तथा पालन करते हुए जितने अंश वीतराग भाव होंगे उतने अंश कर्मों का क्षय होगा। वीतराग भावों की प्रबलता में कभी कभी अनेक जन्म जन्मान्तरों के बांधे हुए पाप कर्म क्षणमात्र में क्षय हो जाते हैं। इसलिये शुभ व अशुभ कर्मों से रागद्वेष मत करो, समभाव रखो। जब कर्म अपना फल देते हैं उस समय यदि उस फल को समताभाव पूर्वक भोग लिया जाता है तो वे कर्म क्षय हो जाते हैं और नवीन कर्मों का बंध नहीं होगा यदि होगा तो बहुत कम। यदि कर्मों का फल भोगते समय हर्ष विषाद होता है या रागद्वेष रूप परिणाम होते हैं तो कर्मों का नवीन बंध भी बहुत होता है। अतः मन और इन्द्रियों को ध्यान तपश्चरण आदि द्वारा जीतकर जो अपने ज्ञान स्वभाव में लीन होते हैं उनका मनुष्य-जन्म पाना सफल होता है उन्हीं के कर्मों की निर्जरा अधिक होती है और उन्हीं को परम अतीन्द्रिय अनन्त अविनाशी सुख की प्राप्ति होती है।

दोहा—पूरब बांधे करम जे, क्षरें तपो बल जाय।
सो निर्जरा कहाय है धारे ते शिव जाय॥

मोक्ष तत्व

मुक्ति या मोक्ष शब्द का अर्थ छुटकारा होना है। अतः आत्मा के समस्त कर्म बन्धनों से छूट जाने को मोक्ष कहते हैं। मोक्ष का दूसरा नाम सिद्धि भी है। सिद्धि शब्द का अर्थ प्राप्ति होना है। जैसे धातु के गलाने तपाने आदि से उसमें से मल आदि दूर होकर शुद्ध सोना प्राप्त हो जाता है वैसे ही आत्मा के गुणों को कलुषित करने वाले दोषों को दूर करके शुद्ध आत्मा की प्राप्ति को सिद्धि या मोक्ष कहते हैं। कर्ममल से छुटकारा पाये बिना आत्मा शुद्ध नहीं होता अतः मुक्ति और सिद्धि ये दोनों एक ही अवस्था के दो नाम हैं जो दो बातों को सूचित करते हैं। मुक्ति नाम कर्म बन्धन से छुटकारे को बतलाता है और सिद्धि नाम उस छुटकारे के होने से शुद्ध आत्मा की प्राप्ति को बतलाता है। अतः जैनधर्म में न तो आत्मा के अभाव को ही मोक्ष कहा जाता है जैसा बौद्ध लोग मानते हैं और न आत्मा के गुणों के विनाश को ही मोक्ष कहा जाता है जैसा कि वैशेषिक दर्शन मानता है। जैनधर्म में आत्मा एक स्वतन्त्र द्रव्य है जो ज्ञाता और दृष्टा है किन्तु अनादि काल से कर्म बन्धन से बंधा हुआ होने के कारण अपने किये हुए कर्मों का फल भोगता रहता है। जब वह उस कर्म बन्धन का क्षय कर देता है तो मुक्त कहलाने लगता है।

मुक्त अवस्था में आत्मा के अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य, सूक्ष्मत्व, अगुरुलघुत्व, अवगाहनत्व और अव्याबाधत्व स्वाभाविक गुण विकसित हो जाते हैं। जैसे सोने में से मल के निकल जाने पर उसके स्वाभाविक गुण पीतता आदि ज्यों के त्यों चमकदार और पीला होना है वैसे ही आत्मा में से कर्म के निकल जाने से आत्मा के स्वाभाविक गुण विकसित हो जाते हैं। मुक्त होने पर यह जीव ऊपर को जाता है। जीव का स्वभाव

ऊपर को जाने का है और जैसा कि अग्नि की लपटें स्वभाव से ऊपर को ही जाती हैं। यह अपने उक्त स्वभाव के कारण ही मुक्त जीव ऊपर को जाता है और लोक के अग्रभाग में पहुँच कर स्थिर हो जाता है क्योंकि वहाँ से आगे धर्म द्रव्य का अभाव होता है इसलिये वहाँ ही स्थिर हो जाता है फिर वहाँ से लौट कर वापस संसार में नहीं आता।

मुक्त अवस्था में शरीर रहित केवल शुद्ध आत्मा मात्र रहता है। उसका आकार उसी शरीर के समान होता है जिससे आत्मा ने मुक्ति लाभ किया है जस धूप में खड़े होने से शरीर की छाया पड़ जाती है वैसे ही शरीर की आकृति मात्र आत्मा मुक्त अवस्था में होता है जो अमूर्त होने के कारण दिखाई नहीं देता है।

मुक्त हो जाने के बाद यह आत्मा जन्म, मरण, जरा, रोग, शोक, दुःख, भय आदि सब दोषों से रहित हो जाता है, क्योंकि इन बातों का सम्बन्ध होता है शरीर से, और वहाँ शरीर है ही नहीं तथा मुक्तपना आत्मा की ही शुद्ध अवस्था का नामान्तर है। अतः जब तक आत्मा शुद्ध है, तब तक वहाँ से च्युत नहीं हो सकता और पुनः अशुद्ध होने का कोई कारण वहाँ मौजूद नहीं रहता अतः वहाँ से कभी नहीं गिरता, सदा निराकुलता रूप आत्म-सुख में मग्न रहता है।

प्रश्नावली

१—संवर किसे कहते हैं ? संवर के भेद बताइये।

२—संवर तत्व के मुख्य कारण बताइये।

३—व्रत किसे कहते हैं ? व्रत कितने हैं ? और कौन कौन से हैं।

४—समिति किसे कहते हैं ? समिति कितनी होती हैं उनके नाम बताइये।

५—गुप्ति कितनी होती हैं ? उनके नाम बताइये।

–दशलक्षण धर्म के भेद बताइये और उनमें से प्रत्येक का स्वरूप समझा कर अपने शब्दों में बताइये।

–बारह भावनाओं के नाम बताइये। नीचे लिखी भावनाओं के लक्षण बताइये—

अन्यत्व भावना, संसार भावना, बोधि दुर्लभ भावना, लोक भावना और धर्म भावना।

–(क) परीषह से आप क्या समझते हैं? परीषह कितनी हैं? और उनको कौन सहन करते हैं और क्यों?

(ख) नीचे लिखी परीषहों का स्वरूप बताइये—
आक्रोश परीषह, याचना परीषह, अलाभ परीषह, सत्कार तिरस्कार परीषह, चर्या परीषह, [illegible] परीषह।

(ग) नीचे लिखे साधुओं ने कौन सी परीषह सहन की?

१—आदिनाथ स्वामी को आहार के लिये जाने पर भी आहार न मिला छः महीने तक [illegible] रहा।

२—आनंद स्वामी जब वन में ध्यान [illegible] थे तो सिंह ने उनके शरीर को [illegible]।

३—राजा श्रेणिक ने यशोधर [illegible] के गले में मरा हुआ सर्प डाल दिया, [illegible] चिउँटियाँ उनके शरीर पर चढ़ गईं [illegible] बड़ा कष्ट दिया।

४—सनत्कुमार मुनि को [illegible] हो गया बड़ी पीड़ा हुई। वैद्य के [illegible] इलाज की इच्छा प्रगट न की।

५—सूर्य मित्र मुनि [illegible] के उनके घर गये, [illegible] बुरा भला कहा [illegible] ने [illegible] लिया।

६—एक मुनि बड़ी [illegible]

नहीं मिलता है, प्यास के मारे गला सूख रह
शरीर पर पसीने के कारण रज जम गय
श्रोत में गुलाब गिर गया है, कष्ट बिना खद म
रह रहे हैं।

(घ) एक समय में अधिक से अधिक कितनी परीषह
सकती हैं, और कौन सी ?

(ङ) इन परीषहों में से कौन कौनसी, किस किस कर्म
उदय से होती है ?

९—चारित्र किसे कहते हैं ? चारित्र के भेद बताइये और उ
के प्रत्येक का स्वरूप अपने शब्दों में समझाइये।

१०—संवर से आत्मा का क्या लाभ होता है ?

११—निर्जरा किसे कहते हैं ? निर्जरा के भेद बताइये।

१२—निर्जरा कितने प्रकार की होती है ? उनके नाम बता
और उनका स्वरूप भी दृष्टान्त देकर समझाइये।

१३—निर्जरा का मुख्य साधन क्या है ?

१४—तप से आप क्या समझते हैं ? तप के मुख्य भेद बताइये

१५—अन्तरंग के तप कौन से हैं, और बहिरंग के तप कौन से हैं
उनके नाम बताइये और प्रत्येक का स्वरूप भी अपने सर
शब्दों में समझाकर बताइये।

१६—मोक्ष तत्व किसे कहते हैं ? द्रव्य मोक्ष और भाव मोक्ष
क्या अन्तर है ?

१७—मुक्त दशा में आत्मा कहाँ विराजमान होता है और क्यों
और उस दशा में जो मुख्य गुण विकसित होते हैं उनके
नाम बताइए।

१८—जीव मुक्त परमात्मा किसे कहते हैं ?

१९—अरहन्त अवस्था और सिद्ध अवस्था में क्या अन्तर है ?

२०—क्या एक मुक्त आत्मा मोक्ष से लौट कर संसार अवस्था में
आ सकता है ? यदि नहीं तो क्यों ?

रत्नत्रय (मुनिधर्म)



किसी भी यात्रा के अन्त तक पहुँचने के लिये किसी न किसी मार्ग की आवश्यकता है। प्रत्येक जीवात्मा का अभीष्ट मोक्ष प्राप्ति है। मनुष्य जन्म में ही ऐसा अवसर प्राप्त होता है और इस अभीष्ट की सिद्धि हो सकती है। देवलोक में वह संयम ही नहीं बन पाता जो मोक्ष प्राप्ति के लिये आवश्यक है। नरक गति में एक क्षण के लिए भी मार काट से अवकाश नहीं मिलता है। तिर्यंच गति में हिताहित का इतना विवेक ही नहीं होता कि मोक्ष मार्ग पर आरूढ़ हो सकें। इसलिये चारों गतियों में मनुष्य-गति ही ऐसी गति है जहाँ पर मोक्ष मार्ग के लिये प्रयत्न किया जा सकता है। मनुष्य जन्म प्राप्त होना सरल कार्य नहीं है। जो लोग इसे विषय भोगों में नष्ट कर देते हैं वे चन्दन को ईंधन के रूप में जला डालते हैं और अमृत को पग धोने में नष्ट कर देते हैं। जो लोग मनुष्य जन्म को सार्थक बनाना चाहते हैं उन्हें चाहिये कि मोक्ष मार्ग का ज्ञान प्राप्त करें। उसमें विश्वास करें और उस पर आचरण करें। वह मोक्षमार्ग रत्नत्रय रूप है। वे तीन रत्न हैं—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र। ये तीनों मिलकर ही मोक्षमार्ग हैं जैसा कि तत्वार्थसूत्र में प्रतिपादित किया गया है— 'सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग,' इसी मार्ग का अवलम्बन करने से प्रत्येक जीवात्मा परमात्मपद को प्राप्त कर सकता है।

इससे पहले भाग में रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का वर्णन विस्तृत रूप से किया जा चुका है। सम्यक् चारित्र के सम्बन्ध में भी 'श्रावक धर्म स्वरूप' शीर्षक में

प्रकाश डाला गया है।

जब एक श्रावक श्रावक धर्म या ग्यारह प्रतिमा रूप पालन करते हुए अपने में इस प्रकार से मुनिपद धारण करने की योग्यता और शक्ति देखता है तो वह आचार्य महाराज की शरण में जाकर परम दिगम्बर मुनिपद की दीक्षा धारण करता है और सकल चारित्र अर्थात् १३ प्रकार के मुनि के चारित्र को अपने आत्म कल्याण के लिये बड़ी श्रद्धा और आदर के साथ पालन करता है।

संसारी प्राणी कषायों के वशीभूत होकर नित्यप्रति अपने दैनिक कार्यों की सिद्धि के लिये पंच पाप हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह करता रहता है। इन ही पाँच पापों के पूर्ण रूप से त्याग साधु का होना है, इन पाँच पापों के पूर्ण त्याग का नाम ही पंच महाव्रत है। अहिंसा महाव्रत, सत्य महाव्रत, अचौर्य महाव्रत ब्रह्मचर्य महाव्रत परिग्रह त्याग महाव्रत। इन ही महाव्रतों की दृढ़ता के लिये पंचसमिति और तीनगुप्ति का पालन किया जाता है। इस प्रकार पंचमहाव्रत, पंचसमिति और तीनगुप्ति का मिलाकर तेरह प्रकार का चारित्र मुनि का कहा गया है। इनमें पंच महाव्रत मुख्य हैं। यद्यपि महाव्रतों की संख्या पाँच बनाई गई है परन्तु वास्तव में देखा जावे तो एक अहिंसा महाव्रत में ही बाकी चारों सत्य महाव्रत, अचौर्य महाव्रत ब्रह्मचर्य महाव्रत और परिग्रह त्याग महाव्रत गर्भित हैं। झूठ बोलने से, चोरी करने से, कुशील भाव से तथा परिग्रह की तृष्णा से आत्म गुणों का घात होता है, इसलिये ये सब हिंसा के ही भेद हैं। जहाँ हिंसा का सर्वथा पूर्ण त्याग होता है वहाँ झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन चारों पापों का भी त्याग हो जाता है।

पच महाव्रत

अहिंसा महाव्रत—साधु किसी प्रकार की भी हिंसा किसी दशा में भी नहीं करते न कोई ऐसा कार्य करते है न ऐसा शब्द ही अपने मुख से बोलते हैं जिनसे श्रोता या अन्य किसी भी जीव को किसी भी प्रकार का कष्ट पहुँचे और न कभी किसी जीव का अहित विचारते हैं। जीवन निर्वाह के लिए किसी भी प्रकार का व्यवसाय नही करते। साधु आत्मोन्नति के लिये प्राय नगर ग्राम आदि बस्ती से बाहर रहते हैं। शरीर को जीवित रखने के लिये भिक्षा वृत्ति स्वीकार करते हैं। भोजन के लिये दिन म एक बार ग्राम या नगर म आते हैं और भिक्षा द्वारा सात्विक भोजन प्राप्त करके लौट जाते हैं। मार्ग मे पृथ्वी को देखते हुए शोधते हुए चलते हैं, ऐसा न हो कि प्रमाद से कहीं कोई जीव उनके पाँव के नीचे दबकर मर जावे, कष्ट पावे। सम्भाल कर पुस्तक कमण्डलु पीछी आदि उपकरण जीवजन्तु शून्य स्थान म रखते हैं। परम दयालु प्राणीमात्र के हितैषी परम तपस्वी उत्तम क्षमा के धारक होते हैं। द्रव्य हिंसा और भाव हिंसा के त्यागी होते हैं।

सत्य महाव्रत—मुनिराज सत्यव्रत का पूर्णतया पालन करते हैं। सासारिक कार्यों—जिनमे व्यस्त होने से गृहस्थ प्राय किसी न किसी अंश म असत्य बोलता है। या उसका व्यवहार असत्य होता है—उन समस्त

सासारिक कार्यों एव तत्सम्बन्धी मोह त्याग देने से साधु लौकिक काय सम्बन्धी समस्त प्रकार के असत्यो से अपनी पूर्णतया रक्षा करते हैं। मुनिराज साम्यभाव के धारक होते हैं। वे क्रोध के आवश म लोभ के वशीभूत होकर, शोकग्रस्त या हास्य म भी कभी असत्य वचन नही कहते है। वास्तव म काम, क्रोध लोभ, हास्य, भय आदि क्षुद्र वृत्तियाँ उनकी सब नष्ट हो जाती हैं, उनके वचन मदव हितमित रूप होते हैं उनके वचन परम हितकारी मृदु एव सत्य होते हैं।

अचौर्य महाव्रत—मुनिराज मन, वचन काय से पूर्ण रूप से सवथा चोरी के त्यागी होते हैं। बिना दिये हुये किसी की कोई भी वस्तु ग्रहण नही करते। जल मिट्टी तथा जगल की पत्ती भी बिना दी हुई नही लते हैं। अचौर्य महाव्रत का ध्यान रखत हुये मुनिराज किसी ऐसे घर या स्थान मे नही ठहरत जहाँ कोई सामान वगैरह रखा हो। साधु महाराज किसी व्यक्ति स किसी वस्तु की याचना नही करते, वे किसी गृहस्थी को ऐसा उपदेश नही दते जिससे उसकी प्रवत्ति चौर्य आदि काय मे लग य। जिसके करने से अन्य व्यक्तियो के धन का किसी प्रकार से अपहरण हो। किसी गृहस्थ के वचन, व्यवहार या आकृति द्वारा यदि मुनिराज को यह भास जाव कि वह उन्ह कोई वस्तु भक्ति और श्रद्धा पूवक नही देना चाहता है और उस वस्तु के अपने

से पृथक करने मे उसे दुःख होता है तो वे उस वस्तु को कदापि ग्रहण नही करते। साधु अपनी भिक्षा की शास्त्रोक्त विधि मे कोई कमी या अधिकता नही होने देते। वे किसी से किसी प्रकार का सम्वाद नही करते। पर्वत की गुफा वन वृक्षो के कोटरो मे निवास करते हैं। दूसरो के छोडे हुये स्थान मे ठहरते हैं, जहाँ आप ठहरे हो वहाँ यदि कोई और ठहरना चाहे तो उसे रोकते नही। जहाँ कोई पहले से ठहरा हुआ हो तो उसे वहाँ से हटा कर स्वयं नही ठहरते। इस प्रकार मन, वचन काय से सर्वथा पूर्णरूप से अचौर्य महाव्रत का पालन मुनिराज किया करते है।

ब्रह्मचर्य व्रत—मुनिराज मन वचन काय से सर्वथा मैथुन का त्याग करते हैं। मुनिराज अठारह हजार शील के भेदो का पालन करते हुए स्त्री मात्र के त्यागी होते हैं। वे निरन्तर अपने शुद्ध चिदानन्द रूप आत्मा का अनुभव किया करते हैं। विकार भाव को उत्पन्न करने वाले सब ही कारणो से सर्वथा पृथक रहते हैं। स्त्री सम्बन्धी कथा नही कहते, स्त्रियो के सुन्दर अगोपाग की ओर वे देखते नही। पूर्व मे भोगे हुये भोगो को याद नही करते, आगामी भोगो की इच्छा नही रखते। मुनिराज ऐसे स्थान मे नहीं रहते जहाँ परस्त्री पुरुषो का समागम अधिकता से रहता है वे ऐसे स्थान से दूर जगल आदि एकान्त स्थान मे जहाँ धर्म ध्यान, स्वाध्याय आदि निर्विघ्नता के साथ हो सके, निवास करना पसन्द करते हैं। कामोद्दीपक

भोजन कभी ग्रहण नहीं करते, शरीर का कोई शृङ्गार आदि कभी नहीं करते, इन्द्रिय दमन के हेतु घोर तपश्चरण करते हैं। संयम के अंकुश द्वारा मन को वश में रखते हैं। इस प्रकार साधु पूर्ण रूप से अखण्ड ब्रह्मचर्य महाव्रत का पालन करते हैं।

परिग्रह त्याग महाव्रत—मुनिराज पूर्ण रूप से अंतरंग और बहिरंग के चौबीस प्रकार के परिग्रह के सर्वथा त्यागी होते हैं। मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद इस प्रकार चौदह प्रकार के अंतरंग परिग्रह का त्याग करते हैं। व चांदी, सोना क्षेत्र मकान, धन धान्य, दासी दास, कपड़े, बर्तन, इन दस प्रकार के बाह्य परिग्रह का मुनिराज के सर्वथा त्याग होता है। मुनिराज पाँचों इन्द्रियों के किसी भी इष्ट अनिष्ट विषयों में रागद्वेष रूप प्रवृत्ति नहीं रखते।

पाँच समिति (सावधान रूप प्रवृत्ति)

प्रमादरहित होकर सावधानता पूर्वक वर्तन का नाम समिति है। मुनिराज नीचे लिखी पाँच समितियों का पालन महाव्रतों की रक्षा तथा दृढ़ता के लिए किया करते हैं —

ईर्यासमिति—पृथ्वी को चार हाथ प्रमाण आगे देखकर चलना। दिन के समय ही चलना, रात्रि में गमनागमन नहीं करना। मुनिराज दिन के समय मार्ग को शोधते हुए ऐसे मार्ग से चलते हैं जो मनुष्यों तथा पशुओं के आने जाने से रौंदा हुआ हो। चलते हुए इधर

उधर नहीं देखते। ऐसी सावधानता से चलते हैं जिससे किसी भी जीव को किसी प्रकार भी कष्ट न पहुंचे।

भाषासमिति—मुनिराज शास्त्रोक्त प्रमाणीक सन्देह रहित, हित, मित मिष्ट प्रिय वचन बोलते हैं। उनके मुखारविन्द से संसार का उपकार करने वाले हर प्रकार की बुराइयों का नाश करने वाले, कानों को सुखकारी, सब प्रकार का सन्देह दूर करने वाले और मिथ्यात्व रूप रोग को नाश करने वाले अमृत समान वचन ही निकला करते हैं।

एषणासमिति—मुनिराज दिन में एक बार निर्दोष आहार भिक्षावृत्ति से लेते हैं। वे छयालीस दोष और बत्तीस अन्तराय को टाल कर कुलीन श्रावक के घर केवल तप वृद्धि के अभिप्राय से नवधा भक्ति पूर्वक दिया हुआ आहार ग्रहण करते हैं। शरीर को पुष्ट करने का उद्देश्य उनका नहीं होता है। तपस्या आदि के द्वारा कर्म बन्धन नष्ट करने तथा आत्मोन्नति करने के हेतु शरीर को जीवित रखना आवश्यक है अतः उसकी मृत्यु से रक्षा करने के लिये भोजन ग्रहण करना पड़ता है।

आदाननिक्षेपणसमिति—मुनिराज ज्ञान के साधन शास्त्र तथा कमण्डलु पीछी आदि धर्म के उपकरणों को अपने नेत्रों से देखकर पीछी से शोधकर इस प्रकार सावधानता के साथ रखते उठाते हैं कि किसी जीव को किसी भी प्रकार की बाधा न हो।

व्युत्सर्गसमिति—मुनिराज अपना मल मूत्र, जीव जन्तु रहित प्रासुक भूमि पर इस प्रकार सावधानता के साथ

क्षपण करते हैं कि जिससे किसी भी जीव को किसी प्रकार की भी बाधा न होवे।

इन पाँचो समिति का पालन मुनि व्रत का मूल है। मुनिराज चारित्र की शुद्धि के लिये इनका पालन करते हैं।

गुप्ति (मन, वचन, काय पर नियन्त्रण)

भले प्रकार मन, वचन, काय की यथेच्छा प्रवृत्ति के रोकने का नाम गुप्ति है। गुप्ति तीन हैं।

मनोगुप्ति—ख्याति, लाभ, मान की वाछा बिना मनोयोग का रोकना, मन पर पूरा काबू होना मनोगुप्ति है।

वचनगुप्ति—ख्याति लाभ मान की वाछा के बिना वचन योग का रोकना अर्थात् वचन पर पूरा काबू होना, वचन गुप्ति है।

कायगुप्ति—ख्याति, लाभ, मान की वाछा के बिना काय योग का रोकना अर्थात् शरीर पर पूरा काबू रखना काय गुप्ति है।

गुप्ति ही मुनि पद का मूल है। गुप्ति बिना सम्यक चारित्र नहीं होता और सम्यक चारित्र बिना मोक्ष प्राप्ति नही हो सकती। इस प्रकार पचमहाव्रत, पचसमिति और त्रयगुप्ति रूप तेरह प्रकार के चारित्र का पालन मुनिराज किया करते है। इसके अतिरिक्त मुनिराज पाचो इन्द्रियो को जीतते हैं। पाचो इन्द्रियो के विषयो मे राग द्वेष नही करते। पाचो इन्द्रियो को जीतना ही पच इन्द्रिय विजय है।

मुनिराज अपने छह आवश्यक का भी नित्यप्रति पालन किया करते हैं, वे छह आवश्यक निम्न प्रकार है—प्रतिदिन सामायिक करते हैं, तीर्थङ्करो की स्तुति करते है, जिनेन्द्र प्रभु की वन्दना करते हैं, प्रमाद से लगे हुए दोषो का शोधन (प्रतिक्रमण) करते हैं, भविष्य मे लग सकने वाले दोषो से बचने के लिये अयोग्य वस्तुओ

का मन, वचन और काय से त्याग (प्रत्याख्यान) करते हैं। लगे हुए दोषो का शोधन करने के लिये अथवा तप की वृद्धि के लिये तथा कर्मों की निर्जरा के हेतु कायोत्सर्ग करते हैं। खडे होकर दानो भुजाओ को नीचे की ओर लटका कर पर के दानो पजा को एक सीध म चार अगुल के अन्तर से रखकर साधु के निश्चल ध्यान मे लीन होने को कायोत्सर्ग कहत हैं।

इनके अतिरिक्त मुनिराज मे सात विशेष गुण यह और होते हैं।

(क) व स्नान नही करते। गृहस्थ के घर जब आहार के लिये जाते हैं तो गृहस्थ ही उनका शरीर पोछ देते हैं।

(ख) दन्त धावन नही करते। भोजन करने के समय गृहस्थ के घर पर ही मुख शुद्धि कर लेते हैं।

(ग) पृथ्वी पर, शिला पर या काष्ठ के तख्ते पर सोते हैं।

(घ) खडे होकर सुकुल श्रावक के घर नवधा भक्ति पूर्वक शास्त्रोक्त विधि अनुसार अल्प आहार करते हैं।

(ङ) दिन में एक बार भोजन करते हैं।

(च) नग्न रहते हैं, धर्मोपकरण को छोड अन्य तिलतुष मात्र भी परिग्रह अपने पास नही रखते।

(छ) केशलोच करते हैं।

इस प्रकार एक जैनमुनि पच महाव्रत, पचसमिति पच इन्द्रिय विजय, छह दैनिक आवश्यक कर्म और सात विशेष गुण। कुल मिलाकर इन अट्ठाईस मूल गुणो का पालन करता है। उसके ऊपर यदि कोई कष्ट आता है तो वह उससे विचलित नही होता। भूख प्यास की वेदना से पीडित होने पर भी किसी के आगे हाथ नही पसारता और न मुख पर दीनता के भाव ही लाता है। उसके लिये शत्रु, मित्र महल, श्मशान कचन, काच, निन्दा, स्तुति सब समान हैं। यदि कोई उसकी पूजा करता है तो उसे भी आशीर्वाद

देता है । और यदि कोई तलवार से उस पर प्रहार करता उसको भी हित कामना करता है । उसे न किसी से राग है और न किसी से द्वेष । रागद्वेष को आत्मा से दूर निकाल कर लिये तो वह साधु का आचरण ही पालता है । मुनि बारह तप का साधन करते हैं । दशलक्षण धर्म का पालन करते हैं । रत्नत्रय की आराधना करते हैं । कभी दूसरे मुनि के साथ तथा कभी एकाकी विहार करते हैं और स्वप्नमात्र में संसार विनाशीक सुख की इच्छा नहीं करते, न अपना समय अधिक में स्वाध्याय और आत्म ध्यान में ही व्यतीत करते हैं ।

वास्तव में जो गुरु (मुनिराज) निरन्तर चलते फिरते, उठते बैठते भोजन करते भी ज्ञानाभ्यास में, धर्म-ध्यान इच्छा निरोध नामी तप में मग्न और तल्लीन रहा करते हैं, ही मुनि गुरु प्रणाम योग्य मान्य हैं, पूज्य हैं, वन्द्य हैं । सच्चे गुरु क्षमा भूषण से भूषित दिगम्बर, पृथ्वी के समान अचल, समुद्र के समान गम्भीर वायु के समान निष्परिग्रह, अग्नि के समान कर्म को भस्म करने वाले, आकाश के समान निर्लेप जल के समान स्वच्छ चित्त के धारक एवं मेघ के समान परोपकारी हुआ करते हैं । जो गुरु परम ज्ञानी, परम ध्यानी तथा दृढ़ वैरागी होते हैं, वे ही सुगुरु हैं, वे ही परम पूज्य तथा वन्द्य मुनिराज हैं ।

इस प्रकार एक जैन साधु मुनि के चारित्र का निरन्तर यत्नाचार पूर्वक पालन करता हुआ अपने आत्मा की ओर अग्रसर होता है । पूर्व संचित कर्म बन्धन को धीरे धीरे परन्तु दृढ़ता के साहस पूर्वक काटता एवं नवीन कर्म बन्धन से अपनी रक्षा करता हुआ साधु अपनी आत्मा को दिन प्रतिदिन अधिकाधिक निर्मल व शुद्ध करता जाता है । अन्त में एक ऐसा समय आता है, जब समस्त ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय [illegible]

चारो घातिया कर्मों को नष्ट करके वह अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। उस जीव मुक्त अरहन्त परमात्मा का ज्ञान सूर्य जो अब तक कर्मरूपी मेघ पटल से आच्छादित व विकृत हो रहा था—एक दम प्रकाश से प्रज्वलित हो उठता है। उनके ज्ञान प्रकाश में संसार के समस्त पदार्थ एवं उनके समस्त गुण व पर्याय झलकने लगती हैं। ज्ञान प्रकाश के साथ वह जीव मुक्त परमात्मा दिव्य अलौकिक अनुपम आनन्द में मग्न हो जाता है। इस अनुपम आनन्द अमृत रस का प्रतिक्षण पान करता हुआ उसमें लीन रहता है। संसार के लाभार्थ उस जीव मुक्त अरहन्त परमात्मा की दिव्य-वाणी का संचार होता है जिसके श्रवण से अनेक व्यक्तियों को ज्ञान प्राप्त होता है, एवं वे आत्मोन्नति की ओर अग्रसर होते हैं।

उपरोक्त जीव मुक्त अवस्था में रहने एवं संसार का कल्याण करने के कुछ समय पश्चात् उनके शरीर सम्बन्धी नाम आयु गोत्र व वेदनीय अघातिया कर्मों का नाश हो जाता है। आयु कर्म क्षीण हो जाने पर उनकी शुद्धात्मा भौतिक शरीर को त्याग कर कर्म बन्धन से सर्वथा मुक्त हो कर, लोक के शिखर पर विराजमान हो जाती है जहां वह शुद्ध सिद्ध परमात्मा सदा के लिये अनुपम दिव्य आनन्द में मग्न रहता है एवं उसकी दिव्य ज्ञान ज्योति में संसार के समस्त पदार्थ अपने अनन्त गुण व पर्यायों सहित प्रतिबिम्बित होते रहते हैं।। कर्म बन्धन से सर्वथा मुक्त हो जाने पर कोई शक्ति ऐसी शेष नहीं रहती जो उस परमात्मा को फिर कर्म बन्धन में डाल सके उसके शुद्ध चिदानन्द स्वरूप में विकार उत्पन्न कर सके या उसकी दिव्य आत्मिक शक्तियों को आच्छादित कर सके। इसलिए वह परमात्मा अपने शुद्ध चिदानन्द स्वरूप में शाश्वत मग्न एवं विराजमान रहता है।

इस प्रकार प्रत्येक आत्मा सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान और

सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रय की औषधि के प्रयोग से अपने मोह ज्वर को दूर कर परमात्मा, जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिष्ठा को प्राप्त कर सकता है। परमात्म पद विश्व में प्रत्येक प्रयत्नशील सुयोग्य प्राणी के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। यथार्थ मे देखा जावे तो प्रत्येक आत्मा में परमात्मत्व की शक्ति छुपी है और वह आत्मविश्वास आत्मज्ञान तथा आत्मरमण आदि के द्वारा अभिव्यक्त होता है। यह रत्नत्रय का माहात्म्य है।

प्रश्नावली

१—साधु की तरह प्रकार का चारित्र क्या होता है ?

२—महाव्रत से आप क्या समझते हैं महाव्रत कितने होते हैं ? उनके नाम बताओ और उनका स्वरूप अपने शब्दों में समझाओ ?

३—यह सिद्ध कीजिये कि अहिंसा महाव्रत में अन्य चार महाव्रत भी गर्भित हैं ?

४—समिति किसे कहते हैं ? यह कितनी होती हैं, इनके नाम बताइये और प्रत्येक समिति का स्वरूप भी समझाइये।

५—गुप्ति का स्वरूप समझाइये, गुप्ति कितनी होती है, उनके नाम बताइये और प्रत्येक गुप्ति का स्वरूप भी अपने सरल शब्दों में बताइये।

६—समिति और गुप्ति के पालन करने से क्या लाभ होता है ?

७—मूल गुण क्या होते है ? मूल गुण क्यो कहलाते हैं साधु के मूल गुण कितने होते हैं और कौन कौन से ?

८—साधु के षट आवश्यक कर्म के नाम बताइये और उनका स्वरूप समझाइये।

९—एक दिगम्बर जैन साधु के चारित्र का दिग्दर्शन अपने सरल शब्दों में कीजिए।

१०—क्या अकेला सम्यक् चारित्र मोक्ष का साधन हो सकता है ?

११—रत्नत्रय का माहात्म्य बतलाइये ?

जिन-वाणी सुधा



नित पीज्यो धी धारी,
जिन वानि सुधा सम जान के, नित पी० ॥
वीर मुखारविंद तैं प्रगटी, जन्म जरा गद टारी।
गौतमादि गुरु उरघट व्यापी परम सुरुचि करतारी ॥
सलिल समान कलिल मल गंजन बुध मन रंजन हारी।
भंजन विभ्रम धूलि प्रभंजन मिथ्या जलद निवारी ॥नित०
कल्याणकतरु उपवन धरिनी, तरनी भव जल तारी।
बंध विदारन पैनी छैनी मुक्ति नसैनी सारी ॥नित०
स्वपर स्वरूप प्रकाशन को यह, भानु कला अविकारी।
मुनि मन-कुमुदनि मोदन शशिभा शम सुख सुमन सुवारी ॥नित०
जाको सेवत बेवत निज पद, नशत अविद्या सारी।
तीन लोकपति पूजत जाको, जान त्रिजग हितकारी ॥नित०
कोटि जीभ सौं महिमा जाकी कहि न सके पविधारी।
'दौल' अल्प मति केम कहै यह अधम उधारन हारी ॥नित०

प्रश्नावली

(१) इस भजन का कंठाग्र सुनाइये ?
(२) इस कविता का भावार्थ अपने शब्दों मे सुनाइये ?
(३) दूसरे तीसरे और चौथे छंद का शब्दार्थ सुनाइये ?
(४) इस कविता मे किसका माहात्म्य गाया है ?



जैन धर्म की देन



माननीय श्री पी० एस० कुमार स्वामी राजा प्रधान मन्त्री मद्रास (२८ दिसम्बर न। १९४८ को मद्रास म श्री श्वेताम्बर स्थानक वासी जन कान्फ्रेन्स के उद्घाटन करते समय दिये गये भाषण म)

[अनुवादक —श्री पृथ्वीराज जन M A शास्त्री]

इतिहास क उदय काल से ही भारत धार्मिक परम्पराओं का देश रहा है। अनक धार्मिक परम्पराओं के फूलने फलने की भूमि होने का जो गौरव इस प्राप्त है वह ससार के किसी दूसरे देश को नहीं है। प्रारम्भ से ही यह एक ऐसा प्रकाश पुञ्ज रहा है, जिसने समय समय पर महान् धर्मों के सन्देश वाहकों के द्वारा विश्व के दूसरे देशों म आध्यात्मिक प्रकाश तथा सांस्कृतिक प्रभा का प्रसार किया है। ससार मे प्राचीन धम वे ही है—जो भारत की पवित्र भूमि में पदा हुए। उन धर्मो मे प्रसिद्ध जन धम भी है, यह उतना ही प्राचीन है जितना कि वदिक धर्म। यह आज भी भारतवष मे जीवित धम के रूप म विद्यमान है। जनधम अति प्राचीन होने का सच्चा अभिमान कर सकता है। भगवान् ऋषभदेव से लेकर भगवान् महावीर तक २४ तीर्थङ्करो ने इस धम की प्रतिष्ठा को बढाया। प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव का वर्णन हिन्दू पुराणों मे भी है, जहाँ उन्हे अति प्राचीनकाल का बताया गया है।

जनधम को अतीत काल म बहुत से राज वशो का सरक्षण मिला। परिणाम स्वरूप इसका प्रभाव बहुत बढा, जनो ने समस्त

भारत में बहुत से विद्यापीठों की स्थापना की। जहा स गान ग्रौर सम्कृनि का प्रचार किया जाता था। यद्यपि उनमे स ग्रनेक समय क प्रवाह म विलीन हागये हैं तथापि ग्रभी तक एस चिन्ह ग्रौर लेख मौजूद हैं जा जनता की प्रवत्तिया ग्रौर जावन पर छाप डालने वाली जनधम की ग्रतीत गौरव गाथा एव श्रष्टता का प्रमाण हैं। दक्षिण भारत म बहुत स एस स्थान हैं ग्रौर मन्दिर हैं, जा जन धम की ग्राध्यात्मिक तथा सास्कृतिक महानता क उज्ज्वल प्रतीक हैं। जनधम की नीति कभी ग्राक्रमणात्मक नही रही, इसीलिये जनसाधारण म इसका प्रचार व विकास सुगमता स हो सका। पूर्ण रूप स ग्रहिंसा का पालन इसका मूल सिद्धान्त था। जनधम न ससार को ग्रहिंसा का सदेश दिया है। उसी सदेश को ग्रहिंसा के ग्रन्तिम सन्देश वाहक स्वर्गीय श्री महात्मा गांधी ने नवीन ग्रथ तथा स्फूर्ति देकर हम सुनाया है।

जनधर्म ने ग्रहिंसा को सबसे पहला नियम घोषित किया है इसका ग्रथ है—मन, वचन काय स किसी भी प्राणी पशु ग्रथवा कीडे मकोडे को भी दु ख न पहुँचाना। जनधम न जिस सदाचार की शिक्षा दी है उसक कुछ ग्रग हैं—ग्रहिंसा का पालन, ग्रगीकृत व्रतो का ग्राचरण, ज्ञान ग्रौर सस्कृति क प्रचाराथ दान निराश्रितो तथा निधनों के कष्टो का निवारण तथा ग्रनुचित ग्रौर ग्रनावश्यक परिग्रह पर रोक थाम। ग्रज्ञान ग्रभिमान तथा ग्रहकार के निराकरण एव विनय क ग्राराधन पर जोर दिया गया है। जनधम का सबसे बडा महत्व पूर्ण सन्देश मोक्षमार्ग है जिसे रत्नत्रय कहते हैं। वे है सम्यक दर्शन सम्यक ज्ञान ग्रौर सम्यक चारित्र। ग्रहिंसा एव विचार वाणी ग्रौर कार्यों म पवित्रता ऐसे सद्गुण हैं जिनका सन्देश राष्ट्रपिता महात्मागाधी भी हम दिया करते थे। उनके हाथो म सद्गुण शक्तिशाली शस्त्र

बन गये। इनके द्वारा उन्होने ऐसी आश्चयजनक सफलतायें प्राप्त की, जिन्हें आज तक विश्व ने देखा ही न था। क्या यह कहना उचित न होगा कि गाधीवाद जैनधम का ही दूसरा रूप है? जिस हद तक जनधम म अहिंसा और सन्यास का पालन किया गया है वह त्याग की एक महान् शिक्षा है। इस गुण की उन व्यक्तियो म बडी जरूरत है जिन्होंने अपना जीवन जनता और देश की सेवा म लगा दिया है।

सामाजिक एकता की स्थापना मे भी जैनधम का एक बडा हाथ रहा है। इसके द्वारा दी गई शिक्षायें व सन्देश समाज के लिये बडे हितकर थ। जनधम की साधु सस्था बडे ऊँचे दर्जे की थी। उसने नतिक तथा सामाजिक नियमो के प्रचार के लिये अनेक निस्वाथ कायकत्ता तयार किये। जहाँ तक दर्शन का सम्बन्ध है जन एक और अविभक्त रहे हैं, किन्तु साधुओ के कुछ आचार नियमो के आधार पर व दो सम्प्रदायो मे बँट गये, दिगम्बर और श्वेताम्बर। उन नियमो मे सबसे महत्वपूर्ण भेद यह था कि दिगम्बर साधु वस्त्र नही रख सकते जब कि श्वेताम्बर रख सकते थ। प्राचीन जनधम म जातपात का कोई स्थान न था। अस्पृश्यता का सवथा अभाव था। जसा कि सभी प्राचीन धर्मों म हुआ है। पतन, अकमण्यता और उपेक्षाभाव के कारण जन समाज म भी मतभेद हुए। दूसरे धर्मो की तरह जनधर्म मे अनक सम्प्रदाय है। फिर भी खूबी यह है कि जन किसी भी सम्प्रदाय के क्यो न हो सभी उन नतिक बातो को मानते हैं, जो जनधम के मूल सिद्धान्त है।

देश के जीवन पर नैतिक व आचार सम्बन्धी प्रभाव के अतिरिक्त कलाओं और भाषाओ के विकास मे भी जनधम की अद्भुत देन है। देश के भाषा सम्बन्धी विकास मे जनो ने बहुत बडा योग दिया है। उन्होन धम प्रचार तथा ज्ञान की रक्षा के

निमित्त भिन्न भिन्न स्थानो म भिन्न भिन्न समय की प्रचलित भाषाओं का उपयोग किया। कुछ भाषाओं को सब प्रथम साहित्यिक रूप देने का श्रेय उन्ही को है। कन्नड का प्राचीनतम साहित्य जैना द्वारा निर्मित है, प्राचीन तामिल साहित्य भी बहुत कुछ जैन लेखकों का ही है। तामिल के मुख्य महाकाव्यो मे से दो "चिन्तामणि" और 'सीलप्पदिकरम्' जैन लेखको की ही कृतियाँ हैं। प्रसिद्ध 'नलदियर' का मूल भी जैन है। यह नगर भी दक्षिण मलापुर (मद्रास शहर का एक भाग) एक समय जैन साहित्यिक रचनाओं के मुख्य स्रोत के रूप मे विख्यात था।

हमारा यह देश जैनधर्म के प्रति सदैव ऋणी है क्योंकि इसने हम अत्यन्त समृद्ध सास्कृतिक वस्तुयें प्रदान की हैं। कलाओं की प्रगति में क्षेत्र मे इसकी देन महान् है। अनेक स्तूप, कला पूर्ण चित्रांकित शिला स्तम्भ और बहुसंख्यक मूर्तियाँ जैन कला की महानता के प्रमाण हैं। मैसूर राज्य के अन्तर्गत श्रवण बेलगोला और दक्षिण कर्णाटक के अन्तर्गत कारकल मे गोमटेश्वर की विशालकाय मूर्तियाँ विश्व के आश्चर्यो म हैं। इन दोनो स्थानो की हाल की यात्रा ने मेरे हृदय पर यह गहरा प्रभाव डाला है कि मनुष्य का कला सम्बन्धी ज्ञान तब तक अधूरा है जब तक वह इन अद्भुत मूर्तियो के दर्शन न कर ले।

('श्रमण' से उद्धृत फरवरी १९५०

प्रश्नावली

१—जैनधर्म की सबसे बड़ी देन ससार को क्या है ?

२—भारत देश के जीवन पर जैनो का नैतिक तथा आचरण सम्बन्धी क्या प्रभाव पड़ा है ?

३—सामाजिक एकता की स्थापना मे जैनधर्म ने क्या प्रदान किया है ?

४—भारतीय कला तथा भाषा के क्षेत्र मे जैनधर्म की क्या देन है ?

५—'जैनधर्म की देन' इस विषय पर एक छोटा सा निबन्ध अपनी परिभाषा म लिखिये।

दक्षिण का एक प्राचीन स्थान

कारकल

श्रवण बेलगोल या जैनबद्री की भाँति ही कर्णाटक देश का दूसरा प्रसिद्ध जैनतीर्थ मूडबिद्री है, यह स्थान होयसल राज्य काल में जैनों का प्रमुख केन्द्र था।

मूडबिद्री से १० मील की दूरी पर कारकल नामक तीर्थ है। यह तीर्थस्थान कारकल नामक नगर से एक मील की दूरी पर स्थित है। यहाँ भी स्थानीय भट्टारकजी की गद्दी और मठ है। लगभग १८ जैन मन्दिर, धर्मशाला, पाठशाला, कुएँ, तालाब, मानस्तम्भ, आदि विभिन्न धर्मायतनों से सुशोभित, एक छोटी सी नदी के तट पर दो पर्वतों के मध्य स्थित यह स्थान अत्यन्त रमणीक है। यहाँ का मानस्तम्भ विशेष रूप से दर्शनीय है। उत्तर दिशा वाले चौरासी पर्वत पर भगवान् ऋषभदेव, अजितनाथ, सम्भवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभु, पुष्पदन्त, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ एवं वासुपूज्यनाथ की १२ अति मनोज्ञ १०-१० हाथ उत्तुङ्ग खड्गासन प्रतिमाएँ चारों दिशाओं में विराजमान हैं। उनके अतिरिक्त और भी अनेक छोटी बड़ी प्रतिमाएँ हैं।

किन्तु कारकल का सबसे बड़ा आकर्षण श्री बाहुबली जी अर्थात् गोम्मट स्वामी की ३६ फीट ऊँची विशालकाय प्रतिमा है, जिसे सन् १४३२ ई० में कारकल के तत्कालीन नरेश वीर पाण्ड्य भैरवरस आडेयर ने निर्मित कराया था। यह राजा परम धार्मिक

और जैनधर्म का बड़ा भक्त था। शताब्दियों तक इस भाग में जैनधर्म की मान्यता बनी रही।

श्रीक्षेत्र कारकल की यह बाहुबलि की प्रतिमा श्रवण बेलगोल के गोम्मट स्वामी के उपरान्त निर्मित होने वाली उसी महापुरुष की दूसरी प्रसिद्ध प्रतिमा है और उक्त प्रतिमा के अतिरिक्त अन्य सब की अपेक्षा अधिक विशाल है। कुशल मूर्तिकार ने श्रवण बेलगोल की मूर्ति को सामने रखकर उसी की प्रतिमूर्ति बनाने की चेष्टा की है। यद्यपि वह इस कार्य में पूर्णतया सफल नहीं हो पाया है तथापि यह मूर्ति भी अत्यन्त आकर्षक मनोज्ञ एवं कलापूर्ण है।

इसके बाद दक्षिण के अनेक स्थानों में श्री बाहुबलि स्वामी की छोटी बड़ी अगणित मूर्तियाँ स्थापित हुई, जिसके कारण उक्त महापुरुष की पूजा का विशेष प्रचलन हुआ। कारकल न केवल एक प्रसिद्ध जैनतीर्थ है वरन् मध्यकाल का एक प्रमुख जैन सांस्कृतिक केन्द्र भी रहा है।

प्रश्नावली

१—कारकल कहाँ है और क्या प्रसिद्ध है?

२—इस तीर्थ का निर्माण कब और किसने किया?



शत्रुञ्जय

गुजरात काठियावाड़ में पालिताणा एक छोटा सा किन्तु सुंदर नगर है और रेलवे स्टेशन भी है। इसके दो मील की दूरी पर एक पर्वत पर प्रसिद्ध जैन तीर्थ शत्रुञ्जय है। अनेक महात्माओं ने कर्मरूपी शत्रुओं को जीतकर इस स्थान पर मोक्ष व सद्‌गति प्राप्त की थी। सम्भवतः इसीलिए इसका नाम शत्रुञ्जय प्रसिद्ध हुआ। इसका दूसरा नाम पुण्डरीक भी है। आदिदेव भगवान ऋषभदेव के प्रधान गणधर पुण्डरीक ने इसी स्थान से निर्वाण लाभ किया था, ऐसा माना जाता है। जैन मान्यता के अनुसार युधिष्ठिर भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव इन सुप्रसिद्ध पाँचों पांडव भाइयों ने इसी पर्वत पर दुद्धर तपश्चरण करके मुक्ति लाभ किया था। अन्य अनेक पुङ्गवों ने यहाँ तपस्या की।

गुजरात के जैन धर्मानुयायी सोलङ्की नरेशों के समय इस तीर्थ का विशेष उत्कर्ष हुआ। विशेषकर महाराज कुमारपाल सोलङ्की ने अपार द्रव्य व्यय करके यहाँ के प्राचीन मन्दिरों का जीर्णोद्धार तथा अनेक नवीन मन्दिरों का निर्माण कराया था। यह राजा कुमारपाल अपने समय के भारतवर्ष के सर्वशक्तिमान एवं प्रतापी नरेश थे। कलिकाल सर्वज्ञ उपाधिधारी महान् जैन विद्वान् आचार्य हेमचन्द्र उनके गुरु थे।

इसके उपरान्त भी उक्त शत्रुञ्जय तीर्थ पर अनेकों जैन मन्दिरों का निर्माण हुआ और आज उस एक ही स्थान में जैनों के सुन्दर सुरम्य लगभग चार हजार जैन मन्दिर हैं। इन्हीं के कारण यह नगर 'मन्दिरों का नगर' (A city of temples) कहलाता है। ऐसा अन्य उदाहरण भारतवर्ष जैसे धर्म प्राण देश में भी अन्य नहीं मिलता। विदेशी दर्शकों ने भी इस स्थान को देखकर आश्चर्य प्रकट किया और मन्दिरों एवं मूर्तियों की बहुलता, सुन्दरता एवं कला की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है।

इन मन्दिरों में कुछ तो ११ वीं शताब्दी में निर्मित हुए थे। शेष अधिकांश १५ वीं शताब्दी के उपरान्त के हैं। यह जैन तीर्थ इस बात का परिचय देता है कि किसी समय जैन धर्म के अनुयायी न केवल संख्या शक्ति और धन वैभव की दृष्टि से भारतवर्ष में प्रमुख थे वरन् अपने धर्मायतनों के निर्माण में विपुल द्रव्य व्यय करने में भी मुक्तहस्त थे। शत्रुञ्जय की गणना विशेष कर श्वेताम्बर सम्प्रदाय की दृष्टि में जैनधर्म के प्रधान धर्म तीर्थों में है।

प्रश्नावली

१—शत्रुञ्जय तीर्थ कहाँ है? इसका नाम शत्रुञ्जय क्यों पड़ा?

२—शत्रुञ्जय मन्दिरों का नगर (city of temples) क्यों कहलाता है?

३—शत्रुञ्जय तीर्थ का महत्व क्या है? यहां से कितने भव्यात्माओं ने मोक्ष प्राप्त किया? उनमें से किन्हीं प्रसिद्ध प्रसिद्ध के नाम बताइये?

म लगता है उस काल मे वह फल नही देता है, इस के काल का अवाधाकाल कहते है अवाधाकाल के पश्चात् कम की स्थिति तक जितने समय होते हैं उतने ही विभाग कम परमाणुओ के होकर (कम परमाणुओ के एक विभाग को निषेक कहते हैं) एक एक निषेक एक एक समय मे उदय आता रहता है अर्थात् फल देकर झडता रहता है। इस बटवारे में पहले समयों मे अधिक कम व आगे कम कर्म आते हैं अन्तिम समय म सब से कम फल देकर ये सब कम झडते जाते हैं। यदि बाहरी द्रव्य क्षत्र काल भाव अनुकूल होता है तो फल देकर झड जाते हैं नही तो बिना फल दिये झड जाते हैं। जसे किसी ने क्रोध कषाय रूपी कम ४८ मिनट की स्थिति का बाधा और एक मिनट उसका अवाधा काल हुआ और कुल ४७०० कम हैं तो व कम ४७ मिनट म बट जाते हैं पहले पहले मिनटा मे ज्यादह २ कम झडगे, आगे आगे कम होते चले जावेग। यदि इतनी देर तक उस समय में कोई एकात मे बैठकर सामायिक कर रहा है तो निमित्त न होने से क्रोध के फल को बिना प्रगट किये हुये ये कर्म झड जावेंगे यदि किन्ही क्रोध कर्मों का बल तीव्र होगा तो द्वेषभाव किसी पर आजावेगा। यदि मन्द होगा तो कुछ भी विकार परिणामो मे नही आवेगा। (इसके बारे मे विशेष विवरण गोम्मटसार कर्मकाण्ड से जानना चाहिये)।

(गाथा कर्मकाड ४४० ४५०)

उदीर्णा—जो निषेक अभी तक उदय मे आने योग्य नही हुआ

है, उसका पहले ही उदय में ले आना अर्थात् उदय में आने वाले निषक में मिला देना। कर्म का समय से पहले ही जल्दी उदय में लाकर खिरा देना।

उपशान्त—वह निषक जो अभी उदय में आने वाले नहीं हुये हैं और न जिनकी उदीर्णा हो सकती है।

निधत्ति—जो कर्म उदयावलि में प्राप्त न हो सके और सक्रमण अवस्था को प्राप्त न हो सके।

निकाचित—जिस कर्म की उदीरणा सक्रमण, उत्कर्षण और अपकर्षण ये चारो ही अवस्थाय न हो सकें।

सत्व—कर्मों का विद्यमान रहना मूल कर्म प्रकृति को छोड़कर किसी मूल कर्म की एक अन्तर प्रकृति उस ही कर्म की दूसरी प्रकृति बिल्कुल बदल सकती है, इसको निसयोजन कहते हैं।

इस प्रकार आपने देख लिया कि बहुत हद तक कर्मों मे अपकर्षण, उत्कर्षण सक्रमण आदि के द्वारा एक ससारी जीव अपने को दुखी सुखी बना सकता है। अपने पतन तथा उत्थान के लिये वह स्वय जिम्मेवार है। सुख दुख दाता कोई नहीं, जीव का पाप पुण्य है कारण वीरा'।

यदि कोई पापकर्म कर देता है और वह पीछे उसका प्रतिक्रमण (पश्चाताप) बड़े ही शुद्ध भाव से करता है तो पाप कर्म पुण्य मे बदल सकता है या पाप कर्म की स्थिति का घटा सकता है। यदि किसी ने पुण्य कार्य किया, पुण्य बाँधा, पीछे वह पछताता है कि मैंने इतना समय इस शुभ कर्म में लगा दिया, मेरा व्यापार निकल गया, मेरा ग्राहक चला गया या और कोई हरजा हो गया तो ऐसे परिणामो से बंधा हुआ पुण्य कर्म भी पाप रूप हो सकता है या पुण्य कर्म का अनुभाग घट सकता

भारतीय प्राचीनकला की एक अद्‌भुत ज्योति

श्रवण बेलगोल

श्रवण का अर्थ है श्रमण या जैन मुनि, बेल का अर्थ है श्वेत और गोल का अर्थ है सरोवर। इस प्रकार श्रमण बेलगोल अर्थात् 'जैन श्रमणों का श्वेत सरोवर' नाम से विख्यात जैनों का यह प्रसिद्ध तीर्थ कर्णाटक प्रान्त में वर्तमान मैसूर राज्य के हासन जिले में स्थित है इसे जैन बद्री, जैन काशी अथवा गोम्मट तीर्थ भी कहते हैं। यह स्थान चिरकाल से जैनधर्म का एक प्रधान धार्मिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र रहा है। अत्यन्त रमणीक प्राकृतिक वातावरण में मध्य विन्ध्यगिरि एवं चन्द्रगिरि नामक युगल पर्वत स्थित है, उनकी तलहटी में जैन मन्दिरों, चैत्यालयों तथा अन्य संस्थाओं से भरपूर एक छोटा सा नगर है, एक पर्वत के ऊपर उक्त श्वेत सरोवर विद्यमान है।

इन मन्दिरों को बसदि कहते हैं जिनमें से कई बड़े विशाल हैं। अनेक रंग बिरंगी विविध पाषाणमयी जिनबिम्बों से ये मन्दिर भरे हुए हैं। यहाँ के शास्त्र भण्डार भी प्रसिद्ध हैं। इनमें हजारों की संख्या में ताडपत्रों पर लिखे हुये जैन हस्तलिखित ग्रन्थ मौजूद हैं। ग्राम में श्रीमद् चारुकीर्ति महाराज की भट्टारकीय गद्दी है। शंकराचार्य की भांति 'चारुकीर्ति' पद भी परम्परागत है और यह गद्दी भी शंकराचार्य पीठकी जितनी ही प्राचीन है। यहां के पर्वतों एवं मन्दिरों में लगभग पाँच सौ शिलालेख हैं, जिनमें से अनेक ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े मूल्यवान हैं।

उक्त दोनों पर्वतों में से चन्द्रगिरि बहुत प्रसिद्ध प्राचीन पर्वत है जिस पर द्वादश वर्षीय दुर्भिक्ष के समय उत्तरापथ से श्री भद्रबाहु स्वामी ने ५०० मुनियों के संघ सहित आकर समाधि ली थी। भद्रबाहु स्वामी भगवान् महावीर की शिष्य परम्परा का आठवीं पीढ़ी में थे और अन्तिम श्रुति केवलि थे। मगध के सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य इनके प्रिय शिष्य थे। वे अपने पुत्र बिन्दुसार को राज्य सौंप कर गुरु के साथ ही दक्षिण देश को विहार कर गये थे। इसी पर्वत पर उन्होंने भी तप किया और समाधि मरण द्वारा सद्गति लाभ की। इस स्थान पर पाये जाने वाले शिलालेखों से प्राचीन भारतवर्ष के इस महान् प्रतापी सम्राट का जैन होना भली भांति सिद्ध होता है। पर्वत पर वह प्राचीन गुफा भी विद्यमान है जिसमें रहकर इस राजर्षि ने गुरु की सेवा की और तत्पश्चात् तप ग्रहण किया। पर्वत पर सुन्दर मन्दिर, मानस्तम्भ, सरोवर निषधा आदि अनेक प्राचीन स्मारक बने हुए हैं।

विन्ध्यगिरि नामक दूसरे पर्वत पर श्री बाहुबलि महाराज या गोम्मट स्वामी की जगत प्रसिद्ध विशालकाय उत्तुङ्ग प्रतिमा है। ५७ फीट ऊंची यह खड्गासन महामनोज्ञ मूर्ति बहुधा बारह बारह मील की दूरी से दीख पड़ती है। संसार की गिनी गिनी आश्चर्यजनक वस्तुओं में तथा प्राचीन भारत के आश्चर्यों में इसकी गणना है। बड़े बड़े कलाविद् इस मूर्ति की बनावट आकृति एवं छवि को देखकर दंग रह गये हैं। ऐसा कहा जाता है कि इस मूर्ति के आस पास कहीं कोई मक्खी तक नहीं पाया नहीं पड़ती और न कोई पक्षी इस पर बैठता है।

यह अद्भुत मनोहारी मूर्ति भगवान् ऋषभदेव के द्वितीय पुत्र बाहुबलि स्वामी की है। ये महापुरुष इस अवसर्पिणी काल के

मोक्षगामी जीव थे। आदर्श धर्मशूर और परम तपस्वी थे। उन्होंने वर्ष तक एक ही स्थान पर एक ही आसन से खड़े होकर इन्होंने दुद्धर तपश्चरण किया था। यह मूर्ति उस युगादि परम तपस्वी का ऐसा सप्राण सजीव प्रतिबिम्ब है कि इसके दर्शन से दर्शक यही भासने लगता है कि वह महापुरुष संसार की असारता और काल की विनाशक अनित्यता का चुनौती देता हुआ एवं परम गम्भीर परम शान्त मृदु मुस्कान के साथ अपने निजी, स्वाधीन, अनन्त अविनाशी आत्मानन्द मे विभोर है।

इस आश्चर्यजनक मूर्ति का स्थापना सन् ९८३ ई० के लगभग दक्षिण के गंगनरेश राचमल्ल सत्यवाक्य परमादिदेव के प्रधानमन्त्री एवं सेनापति अनेक उपाधियो से विभूषित महाराज चामुण्डराय ने की था। ये नर पुंगव अपने समय के न केवल एक महावीर योद्धा एक परम कुशल सेनानी, अनगिनत युद्धो के विजेता, परम निपुण राजनीतिज्ञ एव शासनाधिकारी थे वरन् एक महान् साहित्यकार और परम धर्मात्मा श्रावक भी थे। अपनी माता के यह बड़ परम भक्त थे और उनकी इच्छा पूर्ति के लिये/उन्ही की प्रेरणा से गोम्मट की इस अप्रतिम मूर्ति का इन्होंने स्थापना की।

इस मूर्ति की पूजा मान्यता और अतिशय जन समाज मे बहुत ही अधिक है। दूर दूर से हजारो यात्री इसके दर्शन के लिये आते हैं। अनेक किम्वदन्तियां इस मूर्ति के सम्बन्ध मे प्रचलित हैं। प्रत्येक बारह वर्ष के उपरान्त इस मूर्ति का महा मस्तकाभिषेक होता है, जिसमे लाखो रुपया व्यय होता है और लाखो श्रद्धालु जन एवं अजन उसमे भाग लेते हैं। इस तीर्थ मे और उसके प्रबन्ध मे राज्य की भी पूरी दिलचस्पी और सहयोग रहता आया है।

वास्तव मे इस तीर्थ के आस पास के अधिकांश राज्यो का राज्य धर्म चिरकाल तक जनधर्म ही रहता था और यह स्थान जैनधर्म का प्रसिद्ध केन्द्र तथा जन सांस्कृतिक प्रमुख दीप स्तम्भ बना रहा है।

(प्रो० ज्योतिप्रसाद जन एम० ए०, एम० बी०)

प्रश्नावली

१—इस क्षेत्र का नाम श्रवणबेलगोल क्यों प्रसिद्ध है ?

२—इस तीर्थ का निर्माण कब और कसे हुआ ?

३—बाहुबलि स्वामी के सम्बन्ध म आप क्या जानते हैं ?

४—सांस्कृतिक दृष्टि से बाहुबलि स्वामी की इस महान् दिव्य मूर्ति का क्या महत्व है ?

५—इस क्षेत्र का सक्षिप्त विवरण अपने शब्दों मे दीजिये ?

६—इस तीर्थ के दर्शन से क्या लाभ होता है ?

—o—

भगवान बाहुबलि की तपस्या और कैवल्य

— ० —

(१)

जा करके बाहुबलि ने तपोवन में जा किया।
उस कृत्य ने संसार सभी दंग कर दिया॥
तप ग्रहण किया कि नाम जहाँ में कमा लिया।
कहते हैं तपस्या किसे, इसको दिखा दिया॥

कायोत्सग वर्ष भर अविचलित खड़े रहे।
ध्यानस्थ इस कदर रहे, कवि किस तरह कहे॥

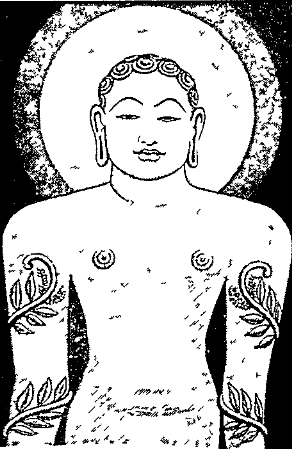
(२)

मिट्टी जमी शरीर से सट कर, इधर उधर।
फिर दूब उगी बेलें बढ़ीं बाहों पे जो चढ़कर॥
बाँबी बना के रहने लगे मौज से फनधर।
मृग भी खुजाने खाज लगे ठूँठ जान कर॥

निस्पृह हुए शरीर से वे आत्म ध्यान में।
चर्चा का विषय बन गये सारे जहान में॥

(३)

पर शल्य रही इतनी गोमटेश के भीतर।
'ये पग टिके हैं मेरे चक्री की भूमि पर॥"
इसने ही रोक रक्खा था कैवल्य का दिनकर।
वरना वह तपस्या थी सभी जाते पाप झर॥



श्री बाहुबली स्वामी

यह बात बढी और सभी देश म छाई।
इतनी कि चक्रवर्ति के कानो से भी आई॥

(४)

सुन दौडे हुये आये भक्ति भाव से भर कर।
फिर बोले मधुर-वच ये चरणा मे झुका सर॥
योगीश ! उसे छोडिये जो द्वन्द है भीतर।
हो जाय प्रगट जिसस शीघ्र आत्म दिवाकर॥
हो धन्य पुण्य मूर्ति कि तुम हो तपस्वरा।
प्रभु ! मेरा सवा है कौन तुम्हारी बराबरी॥

(५)

मुझ से अनेका चक्री हुये, होते रहेंगे।
यह सच है कि सब अपनी इसे भूमि कहेंगे॥
पर, आप सचाई पै अगर ध्यान को देंगे।
तो चक्रधर की भूमि कभी वह न सकेंगे॥
मैं क्या हूँ ? तुच्छ ! भूमि कहाँ ? यह ता विचारा।
काटा निकाल दिल से अवत्पाण को मारो॥

(६)

चक्री ने तभी भाल को धरती स लगाया।
पद रज को उठा भक्ति स मस्तक प लगाया॥
गोया ये तपस्या का ही सामर्थ्य दिखाया।
पुजता जो चाहता था वहा पूजन आया॥
फिर क्या था, मन का द्वन्द सभी दूर हो गया।
अपनी हा निज शांति से भरपूर हो गया॥

(७)

कवल्य मिला, देवता मिल पूजन आये।
नर नारियों ने सब ही आनन्द मनाये

चक्री भी अन्तरग मे फले न समाये।
भाई की आत्म–जय पै अश्रु आँख मे आए ॥
हैं वन्दनीय, जिसने गुलामी समाप्त
मिलनी जो चाहिये वही आजादी प्राप्त ॥

(८)

उस गोमटेश–प्रभु के सौम्य रूप की झाकी।
वर्षों हुये कि किस शिल्पकार ने आँकी ॥
कितनी है कला पूर्ण, विशद पुण्य की झाँकी।
दिल सोचने लगता है, चूमूँ हाथ या टाँकी ॥
है श्रवण वलगोल मे वह आज भी सुस्थि
जिसको विदेशी देखके होते हैं चकित चि

(९)

कहते हैं उसे विश्व का वे आठवाँ अचरज।
खिल उठना जिसे देख के अ तरग का पकज ॥
झुकते हैं और लेते हैं श्रद्धा से चरण रज।
ले जाते हैं विदेश उनके अक्स का कागज ॥
वह धन्य, जिसने दर्शनों का लाभ उठाया।
बेशक सफल हुई है उसी भक्ति की काया ॥

(१०)

उस मूर्ति से है शान कि शोभा हमारी।
गौरव है हमे, हम है उस प्रभु के पुजारी ॥
जिसने कि गुलामी की कला सिर से उतारी।
स्वाधीनता के युद्ध की थी जो कि चिगारी ॥
आजादी सिखाती है गोमटेश की गाथा।
झुकता है अनायास भक्ति भाव से माथा ॥

"भगवत्' उन्हीं सा शौर्य हो साहस हो सुबल हो।
जिससे मुक्ति-लाभ ल, नर जन्म सफल हो॥

—स्व० भगवत्' जैन

प्रश्नावली

१—बाहुबलि और भरत का क्या सवाद हुआ ?

२—बाहुबलि की तपस्या क्यो प्रसिद्ध है ?

३—बाहुबलि को बहुत दिनो तक घोर तपश्चरण करते हुये भी केवलज्ञान क्यो न हुआ ?

४—बाहुबलि स्वामी की मूर्ति का क्या महत्व है ?

५—कवि ने अन्त मे क्या भावना भाई है ?

—o—

जीवनोद्देश्य और उसकी पूर्ति

—०—

हमारा जीवन एक महान् लीला या नाटक है जिसमे हर्ष, विषाद शोक आल्हाद धूप-छाया, सर्दी गर्मी सब मिले हुये हैं। और हमको सब मे योग देना पडता है। हमारा कर्त्तव्य है कि हम हर एक बात को चाह कुछ हो और कभी हो बडी वीरता से और उत्तमता से कर। कोई कारण नही कि कुछ तो प्रसन्नता से करे और कुछ अप्रसन्नता से। प्रत्येक दशा मे समय के अनुकूल प्रवृत्ति कर, परन्तु हृदय पर इसका कोई असर न होने देवें। हृदय मे सदव उद्देश्य पर दृष्टि रख और ससार के बदलते हुये रगो से उस पर कालिमा न लगन दें। जैसे एक "स्टेज एक्टर" या नाटक पात्र को इससे कुछ प्रयोजन नही कि उसका पाठ हर्षोत्पादक है या शोकप्रद, राजा का है या रक का, छोटा है या बडा, अच्छा है या बुरा। इसी तरह हमको भी ससार की घटनाओ मे समरूप रहना चाहिये, अच्छी बात से हर्ष न करें और बुरी से शोक न करें, हर बात का समान भाव से करें। यदि हमको कोई उच्च पद मिल जाय तो उसका अभिमान न करें और यदि किसी नीच पद पर उतार दिये जाय तो कोई विषाद न कर—प्रत्यक दशा म समभाव और समरूप रहें। इसके अतिरिक्त अच्छे सत म प्रवेश और निवृत्ति का भी विचार होता है, परन्तु रगभूमि मे प्रवेश तो प्राय अपने अधिकार से बाहर होता है परतु रगभूमि मे किस प्रकार अपना पाठ करना चाहिये तथा वहाँ स किस तरह निकलना चाहिये

यह हमारे अपने हाथ में होता है और इस अधिकार को कोई व्यक्ति या कोई शक्ति हमसे छीन नहीं सकती। इसी पर हमारे काम की अच्छाई बुराई निर्भर है और इसको हम जितना चाहें सुन्दर और प्रशंसनीय बना सकते हैं। हमारे जीवन की वर्तमान स्थिति चाहे कितनी ही नीच और पतित क्यों न हो परन्तु हम अपना पाट अच्छी तरह उत्साह के साथ करें तो हमारा इस रंगभूमि से बाहर निकलना अर्थात् हमारी मृत्यु बड़ी ही प्रशंसनीय और आदरणीय होगी।

हम इस संसार में इसलिये आये हैं कि अपने अनुभव से यह मालूम करें कि शुद्ध आत्मा क्या वस्तु है और उसकी क्या शक्ति है। आत्मा की वास्तविक शक्ति को जानना ही मानो परमात्मा की शक्ति को जानना है। यही हमारा अभीष्ट और यही हमारा उद्देश्य है। जितना हम अपने समय को आनन्द से व्यतीत करते हैं और जीवन की बदलती हुई अवस्थाओं में समभाव से प्रवृत्त होते हैं उतना ही हम अपने उद्देश्य और मनोरथ में सफल होते हैं। अतएव हमको जीवन की अवस्था में धीर वीर रहना चाहिये, चाहे वह अवस्था अच्छी हो या बुरी नीची हो या ऊँची। जिन कामों को करने की हम शक्ति रखते हैं उनको यथासम्भव अच्छे प्रकार करना चाहिये और जो बात हमारी शक्ति से बाहर हैं उनमें व्यर्थ न पड़ना चाहिये। सर्व शक्तिमान ज्ञाता द्रष्टा परमात्मा इन बातों को स्वयं ही देख रहा है, अतएव हम इनके विषय में कोई भय या चिन्ता न करनी चाहिये और न कभी इनका विचार करना चाहिये।

जिन बातों और जिन कार्यों से हमारा सम्बन्ध है उनको सर्वोत्तम रीति से करना, अपने मार्गानुगामी बन्धुओं की यथाशक्ति सहायता करना, दूसरों की त्रुटियाँ और कमियों को दूर

करके तथा उन कुमार्ग से हटा कर सत्य मार्ग पर लाना जिससे वे पापमय जीवन व्यतीत करने के स्थान में धार्मिक प्रशस्य जीवन व्यतीत कर तथा अपने स्वभाव को सदा सरल शुद्ध और विनीत रखना जिससे ईश्वरीय शक्ति का विकास हो सके, अपने को सदा उत्तम कार्यों के लिये तयार रखना, सबसे प्रेम और सहानुभूति रखना और किसी से भी नहीं डरना परन्तु पाप से सदा भयभीत रहना समस्त पदार्थों के उत्तम गुणों को देखना और उनके प्रकाश की आशा करना इन सब बातों से जीवन बडा ही प्रशस्य और आनन्दमय होगा और फिर हमको किसी भी चीज से डरने की जरूरत नहीं रहेगी, न जीवन से, न मृत्यु से। मृत्यु हमारे स्थायी जीवन का द्वार है, अर्थात् इस स्थूल पौद्गलिक शरीर के विनाश से ही मोक्ष प्राप्त होना है। जहां आत्मा शुद्धतम अवस्था को प्राप्त करके अनन्त सुख का अनुभव करता है, फिर उसके बाद कोई बन्धन नहीं, न जन्म मरण है न दुख व्याधि है। अतएव हमें मृत्यु से कदापि नहीं डरना चाहिये, किन्तु सदैव मृत्यु का हृदय से स्वागत करना चाहिये और अपने को मृत्यु के लिये तयार रखना चाहिये। परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि हम ऐसा जीवन व्यतीत करें कि जिससे जन्म मरण का बन्धन सदैव के लिये टूट जाय। इसमें सन्देह नहीं कि यह एक महान् कठिन कार्य है। इसके लिये अनेक प्रबल शत्रुओं से युद्ध करना होगा। घोर परीषह सहनी होंगी, कठिन व्रत धारण करने होंगे, इन्द्रियों को दमन करना होगा, क्रोधादि विकारों को शमन करना होगा, परन्तु लाभ भी इससे अनन्त और अपार होगा।

इसमें तनिक भी सन्देह या विवाद नहीं है कि हमारे जीवन का सम्पूर्ण आचार व्यवहार हमारी आन्तरिक दशा पर निर्भर है। जीवन का स्रोत ही हमारे अन्तरंग में है।

अपनी आन्तरिक दशा पर अधिकतर विचार करना उचित है। हमको चाहिये कि प्रतिदिन थोडा सा समय शान्ति के साथ एकान्त मे इस विषय पर विचार करने के लिये निश्चित करें। इस समय अपने चित्त को अशुद्ध योग से रोक कर शान्तभाव धारण कर अपनी आत्मा का किंचित् चिन्तवन करें। निश्चय से यह हमारे लिये बडा ही उपयोगी और लाभदायक होगा, क्योंकि कई कारणो से इसकी आवश्यकता है। प्रथम तो इससे यह लाभ होगा कि हम अपने हृदय और अपने जीवन मे से बुराई के बीज निकाल सकेंगे। दूसरा यह लाभ होगा कि हम अपने जीवन के उद्देश्य उच्चतर बना सकेंगे। तीसरे यह लाभ होगा कि हम उन बातो को स्पष्ट रूप से देख सकेंगे जिन पर हम अपने विचारो को जमाना चाहते हैं। चौथे यह लाभ होगा कि हम यह जान सकेंगे कि हमारी आत्मा में और परमात्मा मे क्या भेद है और उनमे क्या सम्बन्ध है? अतएव उसकी भक्ति मे अधिक लीन हो सकेंगे। पाँचवें यह लाभ होगा कि हम अपने दैनिक सांसारिक प्रपंचो मे यह याद रख सकेंगे कि वह सब शक्तिमान अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, संयुक्त परमात्मा जो जगत् गुरु है वही हमारे जीवन का मूल और हमारी सम्पूर्ण शक्तियों का स्रोत है और उससे पृथक न हम मे जीवन है और न शक्ति है। इसी बात को अच्छी तरह समझ लेना और सदा इसके अनुसार चलना मानो ईश्वर को प्राप्त कर लेना है। इसी का नाम ईश्वर दर्शन, सत्याथ भक्ति और शुद्ध उपासना है। ईश्वर हमारे घट में विराजमान है, हम से पृथक नहीं है। इस विचार के परिपक्व हो जाने से हमारे हृदय मे ईश्वरीय ज्ञान का प्रकाश होने लगता है और जितना ही यह प्रकाश बढता जाता है उतना ही हमारा ज्ञान अनुभव और बल बढता जाता है। वास्तव में आत्मा में परमात्मा का बोध होना ही समस्त मतों और धर्मों

का सार है। इससे हमारा प्रत्येक कार्य धर्म का एक अंग बन जाता है और हमारा उठना बैठना, चलना फिरना, खाना पीना भी दर्शन, पूजा और व्रत उपवास के सदृश ही जाता है। इसमे कुछ सन्देह नही। जो धर्म मनुष्य की प्रत्येक क्रिया पर घटित नहीं होता, जिस धर्म म प्रत्येक कार्य से पुण्य पाप का बन्ध नही होता वह नाममात्र का धर्म है, वास्तव मे धर्म नहीं है। ससार भर के अवतारो, महात्माओ, धर्मोपदेशको और सिद्धान्त वेत्ताओ ने चाहे वे किसी युग मे हुए हो और किसी दशा मे हुए हो इस बात को एक स्वर स समर्थन किया है। चाहे और कितनी ही बातो मे उनमे अन्तर हो परन्तु यह सिद्धान्त सर्वमान्य है।

महान् आचार्यों का यह कथन अक्षरश सत्य है कि जब तक तुम छोटे बालकवत् निर्विकार, निर्भय तथा निष्पाप न हो जाओ तब तक तुम ईश्वरीय राज्य मे प्रवेश नहीं पा सकते। जसे छोटे बालको की पाप म प्रवृत्ति नही होती उनमें क्रोध, मान, माया, लोभ की तीव्रता नही होती, वे पीतल और सोने को बराबर समझते हैं, उसी तरह तुमको भी उचित है कि अपनी कषायो को मन्द करो, हृदय को शुद्ध करो और बुरी वासनाओ का दमन करो। सदैव परमात्मा का स्मरण करो और अपने आत्मा को परमात्मा बनाने का उद्योग करो। ऐसा करने स तुमको ईश्वरीय राज्य अर्थात् मोक्ष मिल सकता है।

आजकल प्राय इस विषय की ओर लोगो का बहुत कम लक्ष्य है, वे रात दिन सासारिक कार्य व्यवहार मे ऐसे लगे रहते हैं कि आत्मिक उन्नति का विचार तक भी नही करते, इसी कारण से लोग नित्यश जड़वादी नास्तिक होते जाते हैं। आत्मा परमात्मा शब्दो से ही उन्हें घृणा होती जाती है यह बडा भारी दोष है। इसका परिणाम बडा भयकर होता है। ऐसे मनुष्यो

को सांसारिक विषयों में भी प्राय सफलता नहीं होती, कारण कि उनके जीवन का कोई उद्देश्य नहीं होता और इस कारण से उन्हें कभी सन्तोष या तृप्ति नहीं होती। इससे हमारा यह तात्पर्य नहीं कि सांसारिक कार्य व्यवहार को छोड़ दिया जाय और सिर मुंडवा कर भगवे वस्त्र धारण कर लिये जाय अथवा घर छोड़ कर जंगल में वास कर लिया जाय। आज कल हम लोगों में ऐसी शक्तियाँ नहीं हैं कि रात दिन ध्यान आदि कर सकें। इसके अतिरिक्त जब तक गृहस्थी में रहकर नियमानुसार क्रमबद्ध उन्नति न की जाय तब तक यह सम्भव भी नहीं। आजकल कितने ही मिथ्या भेषधारी अपने को साधु महात्मा, नियमी, संयमी कहते हैं जो वास्तव में साधु नहीं हैं। अतएव हमको कोई आवश्यकता बिना सोचे समझे और बिना शक्ति संसार छोड़ने की नहीं है। हमारा अभिप्राय यह है कि हम प्रथम यह विचार करें कि हम कौन हैं? कहाँ से आये हैं और क्यों आये हैं? तदनन्तर अपने जीवन का उद्देश्य स्थिर करें अर्थात् इस बात का निश्चय करें कि हम अपने आपको क्या और कैसा बनाना चाहते हैं। बस फिर चाहे कोई काम करें, सदैव उस उद्देश्य को अपनी दृष्टि के सामने रक्खें। ऐसा करने से हमको प्रत्येक कार्य में सफलता होगी और हम बहुत जल्द अपनी मनोकामना को पूर्ण कर लेंगे।

अभिप्राय यह है कि प्रत्येक दशा में और प्रत्येक कार्य में अधिकार हमारे ही हाथ में है। हम जिस ओर चाहें बढ़ें और जहाँ तक चाहें उन्नति करें। गुण प्राप्ति आत्मानुभव ईश्वर दर्शन, चारित्र गठन आदि सम्पूर्ण बातें हमारे आधीन हैं। हम अपने जीवन के स्वामी हैं और पूर्ण अधिकारी हैं। चाहे इसे ऊँचे दर्जे पर पहुँचा दें चाहे नीचे गिरा दें। मनुष्य जिस वस्तु के लिये उद्योग करता है वह अवश्य उसको मिल जाती है। संसार

मे ऐसा कोई भी पदार्थ नही जिसके लिये हम शुद्ध हृदय से इच्छा कर—पूर्ण रूप मे उसकी प्राप्ति के लिये उद्योग करें और वह न मिले। मनुष्य जितना उन्नति करता जाता है और ज्यो ज्यो अपने अभीष्ट के निकट पहुँचता जाता है उसकी शक्ति बढती जाती है और निकटवर्ती मनुष्यो पर उसका प्रभाव अधिक होता जाता है। निर्बल दुखी मनुष्यो को उसे देखकर धीरज बँध जाता है और उनका उत्साह बढ जाता है दूसरे मनुष्य उससे सहारा लेते हैं और उसकी देखा देखी उसी मार्ग पर चलने की इच्छा करते है। जिन मनुष्यों के विचार और उद्देश्य सकुचित होते है वे उसका अनुकरण करके अपने उद्देश्य और विचारो को उच्च और उदार बना लेते है। इस प्रकार वह मनुष्य स्वयमेव सत्य मार्ग का प्रदर्शक हो जाता है। इसके आगे बढकर उसे ज्ञात होगा कि वह अनेक निर्बल मनुष्यो को केवल अपने मानसिक विचारो से उत्साहित करके प्रबल बना सकता है और अनेक असहाय मनुष्यो को केवल अपने मनोबल से अवलम्बन देकर सहायता पहुँचा सकता है। यह मानसिक उपदेश इतना महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली होता है कि यदि इसे पूर्ण रीति से समझ कर इसका सदुपयोग किया जाय तो इससे अपरिमित लाभ हो सकता है। सहस्रो व्याख्यानो का भी इतना प्रभाव नही पडता।

जो मनुष्य प्रतिदिन थोडा सा समय एकान्त मे आत्म चिन्तवन मे व्यय करता है और अपने उद्देश्य पर दृष्टि रखकर अपने और परमात्मा के सम्बन्ध को पहचानता है वह मनुष्य सासारिक कार्यों के लिये भी बडा योग्य और चतुर है। वही मनुष्य अपनी बुद्धि और चतुराई से कठिन से कठिन काम को भी भली भाति कर सकता है। वह वर्षों के लिये नही बनाता

किन्तु गनाब्दियों के लिये बनाना है क्योंकि भलाई और सच्चाई का अमर वर्षों तक नहीं मिटता वह नियत समय के लिये ही काम नहीं करता किन्तु अनन्त काल के लिए तैयारी करता है क्योंकि जब मृत्यु आजायेगी उस समय इन्द्रिय दमन चित्त निरोध, आत्म निर्भरता और ईश्वरानुभव यही वस्तुयें उसके साथ जायेंगी क्योंकि इन्हीं वस्तुओं की उसके पास बहुलता है। उसको जीवन मृत्यु से कोई भय नहीं वह जानता है समझता है और उसे श्रद्धा है कि परमात्मा मेरी रक्षा करने के लिये तैयार है वह निडर जहाँ चाहे जाता है, वह निश्चय पूर्वक जानता है कि मैं जहाँ जाऊँगा मेरे सबन देव मेरी रक्षा करेंगे। कदापि मुझे अघरूप मन न छोड़ेंगे किन्तु सन्त्व मुझे लिये जायेंगे यहाँ तक कि अन्त मे मैं उस अनन्त अभय स्थान पर पहुँच जाऊँगा जहाँ से फिर कभी वापस न आऊँगा और जहाँ अनन्त दर्शन अनन्त ज्ञान और अनन्त सुख, अनन्त वीर्य का धारी हो जाऊँगा उसी स्थान का नाम मोक्ष है।

(चारित्र गठन और मनोबल से)

—स्व० श्री दयाचन्द गोयलीय बी० ए०

प्रश्नावली

१ एक मनुष्य का जीवनोद्देश्य क्या होना चाहिये ?

२—जीवनोद्देश्य की प्राप्ति मे सफलता प्राप्त करने के लिये किन किन बातों की आवश्यकता होती है ?

३—जीवन को सफल और आनन्दमय बनाने के लिये किन किन बातों की आवश्यकता है।

४—ईश्वरीय राज्य या मोक्ष प्राप्ति के लिये सबसे अधिक किस बात की आवश्यकता है ?

५—इस पाठ का सारांश अपनी सरल भाषा में लिखिये।

शिक्षा के दोहे

(द्यानत)



सुन सुन चेतन ! लाडले, यह चतुराई कौन ।
आतम हित तुम परिहरो, करत विषय चिन्तौन ॥१॥

गहरी नीव खुदाय के, मका किया मजबूत ।
एक घडी रह ना सके, जब आवै जमदूत ॥२॥

स्वारथ सब जग वलभा, बिन स्वारथ नहिं कोय ।
वच्छा त्यागै गाय को, दूध बिना जो होय ॥३॥

और फिकर सब छाड दे, दो अक्षर लिख लह ।
"द्यानत" भज भगवन्त को, अरु भूखे को देह ॥४॥

य ससार असार है, गव न कर मन माहिं ।
ज जे उपजे भूमि प, जगसा छूटे नाहिं ॥५॥

जिनको भौंहे फरकत, डरते इन्द फनिन्द ।
पायन पवत फोडते, खाये काल मगिन्द ॥६॥

नारी सकल सारगी, सुत फांसी अनिवार ।
घर बंदीखाना कहा, लोभ गु चौकीदार ॥७॥

अ र अनुभव कीजिय बाहर करुणा भाव ।
दो बातन कर हूजिय, "द्यानत" शिवपुर राय ॥८॥

चेतन प्राणी चतिय छिन छीन छीजत आव ।
पल पल दे चतावनी, कर निज हित अब दाव ॥९॥

जो छिन खोवत भाग मे, सो छिन भज क्या नाम।
यातें नरकादिक मिल, पावें, सुख अभिराम ॥१०॥
विषय भुजग के डस रहे बहुत संसार।
जिन्हें विषय व्याप नहीं, तिनको जीवन सार ॥११॥
नरभव दुलभ है महा, नर बिन मुक्ति न होय।
भाग्य उदय नर भव मिलो, विषयन सग मत खोय ॥१२॥
तन धन लाज कुटुम्ब के, कारण करता पाप।
इन ठगिया के बस पड़ा, पावे बहु दुख आप ॥१३॥
जिन को तू अपना कहे सो तो तेरे नाहिं।
कै तो तू इन को तज, कै ये तोहि तज जाहि ॥१४॥
पलक एक की सुध नहीं, सिर पर गाज काल।
तू निचिन्त क्यों बावरे छांडहु सब भ्रम जाल ॥१५॥
भज भगवन्त महन्त को, जीवन-प्राण अधार।
जो हित सुख चाहे आपका, 'द्यानत' कहै पुकार ॥१६॥

प्रश्नावली

१—इन दोहा में से जो तुम्हें सबसे प्रिय हो कण्ठाग्र सुनाये ?

२—पिछले पाँच दोहों का अर्थ अपने शब्दों में सुनाइये ?

३—इस पाठ से आपको क्या क्या शिक्षायें मिलती हैं ?

— ० —

नागरिकता



जब से देश स्वतन्त्र हुआ है तबसे 'नागरिक तथा नागरिकता' 'कर्त्तव्य तथा अधिकार' ऐसे शब्दों का प्रयोग अत्यन्त साधारण होगया है। नागरिक शास्त्र का पठन पाठन स्कूल तथा कालिजों के विद्यार्थियों के लिये अति आवश्यक विषय बन गया है। इसके अध्ययन से बालक यह सीखते हैं कि व्यक्ति के अपने प्रति, अपने कुटुम्ब के प्रति ग्राम व नगर के प्रति राष्ट्र के प्रति इस विशाल मानव समाज के प्रति क्या कर्त्तव्य और अधिकार हैं। नागरिकता *सभ्यता के विकास की सीढी है। एक सच्चा नागरिक सदा* समाज के विकास के साथ साथ अपना विकास करता हुआ आगे बढ़ता है। व्यष्टि में समष्टि और समष्टि में व्यष्टि का दर्शन करता है। सच्ची नागरिकता की भावना जागृत होने पर मनुष्य दूसरों के हितार्थ सदा अपना सर्वस्व त्याग करने को उद्यत रहता है। उसका अपना स्वार्थ पीछे हट जाता है। वह सदा लोक कल्याण की सोचता है। उसका तन, मन, धन सब कुछ दूसरों के लिये हो जाता है। 'परोपकाराय सतां विभूतय' का सिद्धान्त सदैव उसके सामने रहता है।

आज चारों ओर अधिकारों की माग सुनाई पडती है। समाज के सभी सदस्य अपने अधिकारों के प्रति नितान्त जागरूक दिखाई पड़ते हैं। यहाँ तक कि विद्यार्थी वर्ग भी मिल मजदूरों की भाँति आज अपने अधिकारों के लिये संघर्ष करते हुये दिखाई पड़ते हैं।

पति-पत्नी और पिता पुत्र में भी अधिकारों का एक झगड़ा चल रहा है, स्त्री वर्ग कहता है कि हमारे मूल अधिकारों का अपहरण हो रहा है। निदान सभी लोग अधिकार प्राप्ति के लिये व्यग्र हैं। पर यह कभी न भूलना चाहिये कि इस प्रकार की अधिकारों की माग सच्ची नागरिकता की शत्रु है। कर्तव्य पालन में ही अधिकार प्राप्ति का रहस्य छिपा है। जिस समाज अथवा राष्ट्र के सदस्य केवल अधिकारों के लिये चिल्लाते रहते हैं और अपने कर्तव्य पालन की ओर ध्यान नहीं देते वह समाज कभी भी सुसभ्य एवं उन्नत नहीं बन सकता। हम देखते हैं कि यदि हम अपने कर्तव्य का पालन करते हैं तो अधिकार हमें स्वयं प्राप्त हो जाते हैं। उदाहरण के लिये देखिये कक्षा के प्रत्येक विद्यार्थी का अधिकार है कि उसकी सब पुस्तकें उसके अपने डेस्क में सुरक्षित रखी रहें वह निःशंक होकर कक्षा भवन के बाहर घूमे फिरे पर उसकी पुस्तकों को कोई हाथ न लगावे। साथ ही साथ प्रत्येक विद्यार्थी का यह कर्तव्य भी है कि वह किसी की पुस्तकों को हाथ न लगावे साथियों की किसी भी वस्तु की चोरी न करे वरन् अपनी वस्तुओं की अपेक्षा साथियों की वस्तुओं की अधिक देख भाल करे। अब देखिये एक परिस्थिति है, व्यक्ति जो केवल अधिकार से चिन्तित है केवल अपनी वस्तुओं की सुरक्षा के लिए परेशान रहता है शेष व्यक्तियों को उसका कोई ध्यान नहीं दूसरी दशा में जब हम अपने कर्तव्य पालन की ओर अधिक ध्यान देते हैं तो हम दूसरों की वस्तुओं की सुरक्षा का ध्यान रखते हैं अपनी का नहीं। पहली परिस्थिति में व्यक्ति अकेला अपनी वस्तुओं का रक्षक है दूसरी में उसके अतिरिक्त अन्य सब उसकी वस्तुओं के रक्षक हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि कर्तव्य पालन में ही वास्तविक अधिकार प्राप्ति होती है केवल अधिकारों के लिये चिल्लाने से नहीं। समाज

के विकास के साथ ही व्यक्ति का विकास सम्भव है। हमें अपनी अपेक्षा अपने पड़ोसी का कहीं अधिक ध्यान रखना चाहिये। यदि पड़ोसी का जीवन सुखी है तो उसकी छाया हम पर अवश्य पड़ेगी।

नागरिकता में उन सभी गुणों का समावेश है जिनके धारण करने से मानव समाज यथायोग्य उन्नति कर सके। चारों ओर प्रेम, सहानुभूति और सुख का वातावरण बन सके।

नागरिकता की भावना उत्पन्न होने से हमारे सभी दैनिक कार्य सांस्कृतिक हो जाते हैं। दूसरों के साथ किस प्रकार का व्यवहार करें, अगर हमसे किसी का जाने अनजाने अहित हो जाय तो हम किस प्रकार अपनी भूल के लिये क्षमा याचना करनी चाहिये जिससे संतप्त हृदय को सान्त्वना मिल सके यह सभी बातें एक अच्छे नागरिक में होनी चाहियें।

अभ्यास

१—नागरिकता का क्या अर्थ है ?

२—नागरिकता का महत्व स्पष्ट कीजिए ?

३—सिद्ध कीजिये अधिकारों की शोभा कर्त्तव्य पालन पर निर्भर है।

४—नागरिक के मुख्य कर्तव्य क्या हैं ?

५—नागरिकता के गुणों की विवेचना कीजिए।



दशलक्षण या पर्यूषण पर्व

(ले०—श्री प० कलाशचन्द्रजी शास्त्री जनधम से उद्धृत)

—०—

जनों का सबसे पवित्र पव दशलक्षण पव है। दिगम्बर सम्प्रदाय म यह पव प्रति वष भाद्रपद शुक्ला पचमी से चतुर्दशी तक तथा श्वेताम्बर सम्प्रदाय म भाद्रपद कृष्णा १२ से भाद्रपद शुक्ला ४ तक मनाया जाता है। इन दिनों मे जन मदिरों म खूब आनन्द छाया रहता है। प्रतिदिन प्रात काल स ही सब स्त्री पुरुष स्नान करके मदिरो म पहुँच जाते है और बडे आनन्द के साथ भगवान का पूजन करते हैं पूजन समाप्त होने पर प्रतिदिन श्री तत्त्वार्थ सूत्र के दस अध्यायो म स एक एक अध्याय का व्याख्यान और उत्तम क्षमा मादव आजव शौच सत्य सयम तप, त्याग आकिचन्य और ब्रह्मचय इन दस धर्मों म से एक एक धम का विवेचन होता है। इन दस धर्मों के कारण इस पव को दश लक्षण पव कहते है क्योकि धम के उक्त दस लक्षणों का इस पव मे खास तौर से आराधन किया जाता है। व्याख्यान के लिये बाहर से बडे बडे विद्वान् बुलाये जाते हैं और प्राय सभी स्त्री-पुरुष उनके उपदेशो स लाभ उठाते है। त्याग धम के दिन परोपकारी सस्थाओं का दान दिया जाता है और आश्विन कृष्णा प्रतिपदा के दिन पव की समाप्ति होने पर सब पुरुष एकत्र होकर परस्पर मे गले मिलते हैं और गत वष की अपनी गलतियो के लिये परस्पर मे क्षमा याचना करते हैं। जो लोग दूर देशान्तर म बसते हैं उनसे क्षमावणी पत्र लिखकर क्षमा याचना की जाती है।

प्राचीन हिन्दी गद्य-दर्शन

केकई की विद्वत्ता, बुद्धिमत्ता तथा वीरता

उत्तर दिशा विष एक कौतुक मगल नामा नगर ताके पवत समान ऊँचा कोट, तहाँ राजा शुभमति नाम माथ नहीं यथाथ शुभमति ही है, ताकी राणी पृथुश्री गुण रूप आभरणा से मडित ताके केकई पुत्री, द्रोणमघ पुत्र भए जिनके गुण दशो दिशा मे व्याप रहे। केकई अति सुदर, सव अग मनोहर, अद्भुत लक्षणो की धारणहारी, सव कलाओ की पारगामिनी, अति शोभती भई। सम्यग्दर्शन सयुक्त, श्राविका के व्रत पालन-हारी जिन शासन की वेत्ता, महा श्रद्धावन्ती तथा साख्य, पातजलि, वशपिक, वेदात, न्याय, मीमासा, चार्वाकादिक पर शास्त्र रहस्य की ज्ञाता तथा लौकिक शास्त्र शृङ्गारादिक तिन की रहस्य जाने नृत्यकला मे अति निपुण, सव भेदो से मण्डित जो सगीत को भली भाँति जान। सुर, तालके भेदानुभद के जानन हारी, चार प्रकार के वादित्र जसे केकई बजावे तसे और कोई न वजा सके। सकल भाषाओ मे निपुण और रस के भेद नव शृङ्गार, हास्य, करुण, वीर, अद्भुत, भयानक, रौद्र, वीभत्स शात तिनके भेद जसे केकई जाने तसे कोई न जाने। अक्षर, मात्रा अर गणित शास्त्र म निपुण गद्य-पद्य सव मे प्रवीण, व्याकरण, छन्द, अलङ्कार, नाममाला, लक्षण, शास्त्र तक, इतिहास और चित्रकला में अति प्रवीण तथा रत्न परीक्षा, अश्व परीक्षा,

नर परीक्षा, नख परीक्षा गज-परीक्षा वक्ष परीक्षा, वस्त्र-परीक्षा सुगन्धादिक द्रव्यों का निपजावना इत्यादि सब बातां म प्रवीण। ज्योतिष विद्या म निपुण बाल वृद्ध तरुण मनुष्य तथा घोडे हाथी इत्यादि सब के इलाज जान। मन्त्र औषधादि सब में तत्पर, वद्य विद्या निधान सब कला मे सावधान महाशीलवन्ती महामनोहर युद्ध कला म अति प्रवीण, शृ गारादि कला म अति प्रवीण, विनय ही है आभूषण जाके, कला अर गुण अर रूप मे एसी कन्या और नाही। केकई के गुणा का वर्णन कहा तक कर। तब एक दिन पिता न विचारा कि इसो कन्या के योग्य वर कौन ? स्वयवर करिये तहां यह आप ही वर। ताने हरि वाहन आदि अनेक राजा स्वयवर मडप म बुलाये सो विभव कर सयुक्त आय। तहाँ भ्रमते भ्रमते जनक सहित दशरथ भी आय। सो यद्यपि इनके निकट राज्य का विभव नहीं तथापि रूप और गुणो कर सब राजाओं तें अधिक हैं। सब राजा सिंहासन पर बठ अर कन्या को द्वारपाला ने सबन के नाम ग्राम गुण कहे हैं सो वह विवेकिनी साधु रूपिणी मनुष्यो के लक्षण जानने वाली ने प्रथम ही दशरथ की ओर नेत्र रूप नीलकमल की माला डारी बहुरि वह सुदर बुद्धि की धारणहारी जसे राजहसनी बुगलो के मध्य बठा जा राजहस उसकी ओर जाय तसे अनेक राजाओं क मध्य बठा जो दशरथ ताकी ओर गई। सो भाव माला तो पहले ही डारी हुती अर द्रव्य रूप जो रत्नमाला सो भी लोकाचार के अथ दशरथ के गले म डारी।

इस पर कयक नप जे न्यायवन्त वठ हुते ते प्रसन्न भये अर कहते भये कि जसी कन्या थी तसा ही योग्य वर पाया अर कयक विलखे होय अपने देश उठ गये अर कयक जे अति ढीठ थे ते क्रोधायमान होय युद्धको उद्यमी भये और कहते भये जे बडे बडे वश के उपजे अर महाऋद्धि के मण्डित ऐसे नपतिन को तजकर

प्राचीन हिन्दी गद्य-दर्शन

केकई की विद्वत्ता, बुद्धिमत्ता तथा वीरता



उत्तर दिशा विषै एक कौतुक मगल नामा नगर तावे पवत समान ऊँचा कोट तहाँ राजा शुभमति नाम मात्र नही यथार्थ शुभमति ही है, ताकी राणी पृथुश्री गुण रूप आभरणा से मडित ताके केकई पुत्री, द्रोणमेघ पुत्र भए जिनके गुण दशो दिशा म व्याप रहे। केकइ अति सुदर, सब अग मनोहर, अद्भुत लक्षण की धारणहारी, सब कलाओ की पारगामिनी, अति शोभती भई। सम्यग्दर्शन सयुक्त, श्राविका के व्रत पालनहारी, जिन शासन की वेत्ता, महा श्रद्धावन्ती तथा साख्य, पातजलि, वैशेषिक वेदात, न्याय, मीमासा चार्वाकादिक पर शास्त्र रहस्य की ज्ञाता तथा लौकिक शास्त्र शृङ्गारादिक तिन की रहस्य जाने नत्यकला मे अति निपुण, सब भेदो से मण्डित जो सगीत को भली भाँति जाने। सुर तालके भदानुभेद के जानन हारी, चार प्रकार के वादित्र जस केकई बजावे तैसे और कोई न बजा सके। सकल भाषाओ मे निपुण और रस के भेद नव शृङ्गार, हास्य, करुण, वीर, अद्भुत, भयानक, रौद्र, वीभत्स शान्त तिनके भद जसे केकई जाने तसे कोई न जाने। अक्षर, मात्रा अर गणित शास्त्र म निपुण, गद्य-पद्य सब मे प्रवीण, व्याकरण, छद, अलङ्कार, नाममाला, लक्षण, शास्त्र, तर्क, इतिहास और चित्रकला मे अति प्रवीण तथा रत्न परीक्षा, अश्व परीक्षा,

नर परीक्षा, शस्त्र परीक्षा, गज परीक्षा, वक्ष परीक्षा, वस्त्र परीक्षा सुगन्धादिक द्रव्या का निपजावना इत्यादि सब बाता मे प्रवीण। ज्योतिष विद्या मे निपुण, बाल वृद्ध तरुण मनुष्य तथा घोडे हाथी इत्यादि सब के इलाज जाने। मन्त्र औषधादि सब में तत्पर, वैद्य विद्या निधान, सब कला मे सावधान महाशीलवन्ती, महामनोहर युद्ध कला में अति प्रवीण, शृंगारादि कला मे अति प्रवीण, विनय ही है आभूषण जाके, कला अर गुण अर रूप मे ऐसी कन्या और नाही। केकई के गुणो का वर्णन कहा तक करे। तब एक दिन पिता ने विचारा कि ऐसी कन्या के योग्य वर कौन? स्वयंवर करिये तहा यह आप ही वरे। तातै हरि वाहन आदि अनेक राजा स्वयंवर मंडप मे बुलाय सो विभव कर संयुक्त आये। तहां भ्रमते सन्ते जनक सहित दशरथ भी आये। सो यद्यपि इनके निकट राज्य का विभव नहीं तथापि रूप और गुणों कर सब राजाओं ते अधिक हैं। सब राजा सिंहासन पर बैठे अर केकयी को द्वारपालो ने सबन के नाम ग्राम गुण कहे हैं सो वह विवेकिनी साधु रूपिणी मनुष्यो के लक्षण जानने वाली ने प्रथम तो दशरथ की ओर नेत्र रूप नीलकमल की माला डारी बहुरि वह सुंदर बुद्धि की धारणहारी जैसे राजहंसनी बुगला के मध्य बैठा जो राजहंस उसकी ओर जाय तैसे अनेक राजाओं के मध्य बैठा जो दशरथ ताकी ओर गई। सो भाव माला तो पहले ही डारी हुती अर द्रव्य रूप जो रत्नमाला सो भी लोकाचार के अर्थ दशरथ के गले मे डारी।

इस पर कयक नृप जे न्यायवन्त बैठे हुते ते प्रसन्न भय अर कहते भये कि जैसे कन्या थी तैसा ही योग्य वर पाया अर कयक विलक्ष होय अपने देश उठ गये अर कयक जे अति ढीठ थे ते क्रोधायमान होय युद्धको उद्यमी भये और कहते भये जे बडे बडे वंश के उपजे अर महाऋद्धि के मण्डित ऐसे नृपतिन को तजकर

प्राचीन हिन्दी गद्य-दर्शन

ककई की विद्वत्ता, बुद्धिमत्ता तथा वीरता

उत्तर दिशा विष एक कौतुक मगल नामा नगर, ताके पवत समान ऊँचा कोट तहा राजा शुभमति नाम मात्र नही यथार्थ शुभमति ही है, ताको राणी पृथुश्री गुण रूप आभरणो से मडित ताके केकई पुत्री द्रोणमघ पुत्र भए जिनके गुण दशो दिशा मे व्याप रहे। केकई अति सुदर, सव अग मनोहर, अद्भुत लक्षणा की धारणहारी सव कलाओं की पारगामिनी, अति शोभनी भई। सम्यक्दर्शन सयुक्त, श्राविका के व्रत पालनहारी, जिन शासन की वेत्ता, महा श्रद्धावन्ती तथा साख्य, पातजलि वशपिक वेदात, याय, मीमासा, चार्वाकादिक पर शास्त्र रहस्य की ज्ञाता तथा लौकिक शास्त्र शृङ्गारादिक तिन की रहस्य जाने नृत्यकला मे अति निपुण, सव भेदो से मण्डित जो सगीत का भली भाँति जाने। सुर, तालके भेदानुभेद के जानन हारी चार प्रकार के वादित्र जस केकई वजावे तसे और कोई न वजा सके। सकल भाषाओं म निपुण और रस के भेद नव-शृङ्गार, हास्य, करुण वीर, अद्भुत, भयानक, रौद्र, वीभत्स शा त तिनके भेद जसे केकई जाने तस कोई न जाने। अक्षर, मात्रा अर गणित शास्त्र म निपुण, गद्य पद्य सव मे प्रवीण, व्याकरण, छद अलङ्कार, नाममाला, लक्षण, शास्त्र, तर्क, इतिहास और चित्रकला मे अति प्रवीण तथा रत्न परीक्षा, अश्व परीक्षा,

नर परीक्षा, शस्त्र परीक्षा गज परीक्षा, वक्ष परीक्षा, वस्त्र परीक्षा सुगन्धादिक द्रव्यों का निपजावना इत्यादि सब बातों में प्रवीण। ज्योतिष विद्या में निपुण, बाल वृद्ध तरुण मनुष्य तथा घोड़े हाथी इत्यादि सब के इलाज जाने। मन्त्र औषधादि सब में तत्पर, वैद्य विद्या निदान सब कला में सावधान महाशीलवन्ती, महामनोहर युद्ध कला में अति प्रवीण शृ गारादि कला में अति प्रवीण, विनय ही है आभूषण जाके कला अर गुण अर रूप में एसी कन्या और नाहीं। केकई के गुणों का वर्णन कहाँ तक करें। तब एक दिन पिता ने विचारा कि एसी कन्या के योग्य वर कौन? स्वयंवर करिये तहा यह आप ही वरे। ताने हरि वाहन आदि अनेक राजा स्वयंवर मंडप में बुलाय सो विभव कर संयुक्त आये। तहाँ भ्रमते संते जनक सहित दशरथ भी आये। सो यद्यपि इनके निकट राज्य का विभव नहीं तथापि रूप और गुणों कर सब राजाओं तें अधिक है। सब राजा सिंहासन पर बैठे अर कन्यो को द्वारपाली ने सबन के नाम ग्राम गुण कहे हैं सो वह विवेकिनी साधु रूपिणी मनुष्यों के लक्षण जानने वाली ने प्रथम तो दशरथ की ओर नेत्र रूप नीलकमल की माला डारी बहुरि वह सुंदर बुद्धि की धारणहारी जैसे राजहंसनी बुगला के मध्य तिष्ठा जो राजहंस तिसकी ओर जाय तैसे अनेक राजाओं के मध्य बैठा जो दशरथ ताकी ओर गई। सो भाव माला तो पहले ही डारी हुती अर द्रव्य रूप जो रत्नमाला सो भी लोकाचार के अर्थ दशरथ के गले में डारी।

इस पर कयक नृप जे न्यायवन्त बैठे हुते ते प्रसन्न भये अर कहत भये कि जैसी कन्या थी तैसा ही योग्य वर पाया अर कयक विलखे होय अपने देश उठ गये अर कैयक जे अति ढीठ थे ते क्रोधायमान होय युद्धको उद्यमी भये और कहत भये जे बड़े बड़े वंश के उपजे अर महाऋद्धि के मण्डित ऐसे नृपनिन को तजकर

यह कन्या नाही जानिये कुल जिसका ऐसा यह विदेशी ताहि नस वरें। माटा है अभिप्राय जाका ऐसो कन्या है तात या विदेशी को यहाँ से काढ कर कन्या के केश पकड कर बलात्कार हर ला। एमा कहकर व दुष्ट कयक युद्ध का उद्यमी भए। तब राजा शुभमति व्याकुल होय दशरथ को कहता भया—'हे भव्य! मैं इन दुष्टा का निवारू हूँ तुम इस कन्या का रथ चढाय अन्यत्र जाओ। जसा समय देखिय तसा करिय। सब राजनीति म यह बात मुख्य है।

या भाँति जब ससुर न कहा तब राजा दशरथ अत्यन्त धीर बुद्धि है जिनकी, हँसकर कहते भये—हे महाराज! आप निश्चिन्त रहा। देखा म इन सबनको दशो दिशा को भगाऊँ। एसा कहकर आप रथ विषै चढ अर कक्ई का चढाय लीनी, कैसा है रथ? जाके महामनोहर अश्व जुते हैं। कैसे हैं दशरथ? मानो रथ पर चढे शरद ऋतु के सूर्य ही हैं अर ककई घाडा की वाग सम्भारती भई। कमी है ककई? महापुरुषार्थ के स्वरूप को धरे युद्ध को मूर्ति ही है। पति म विनती करती भई। हे नाथ! आपकी आज्ञा होय जर जाकी मत्यु उदय आई होय ताही की तरफ रथ चलाऊँ। तब राजा कहते भये कि हे प्रिये! गरीबा के मारने कर कहा? जा या गन सेना का अधिपति हेमप्रभ है, जाके सिर पर चन्द्रमा सारिखा सफेद छत्र फिर हैं ताही की तरफ रथ चला। हे रण पण्डित! आज मैं इस अधिपति का ही मारूँगा।

जब दशरथ ने ऐसा कहा तब वह पति की आज्ञा प्रमाण वाही की तरफ रथ चलावती भई। कसा है रथ? ऊँचा है, सफेद है छत्र जाके अर आरक्त रूप हैं महाध्वजा जाकी, रथ विषय दाना दम्पति देव रूप विराजे हैं इनका रथ अग्नि समान है। जे या रथ की ओर आये व हजारा पतग की नाईं भस्म

तहाँ सब रानीनि मध्य राजा दशरथ कैकई तैं कहते भय चन्द्रवन्नी ! तर मन मे जो वस्तु की अभिलाषा होय सो माग ! जा त मांग सोई देऊँ । हे प्राणप्यारी ! तो मो मैं अति प्रसन्न भया है जो तू अति विनार म उग रण म रथ का न प्रेरती तो रुपे साय एते वरी मारे वे रिपवो मैं कसे जीतना ? उन रात्रि का अधकार जगत म व्याप रहा है जो अरुण सारिखा सारथी न होय तो ताहि सूय कस जीत ? या भाँति ककई के गुण वणन राजा ने किये, तब वह पतिव्रता लज्जा क भार कर अधोमुख होगई । राजा ने बहुरि कही, तब ककई ने विनती करी-हे नाथ ! मेरा वर आपके धरोहर है, जिस समय मेरी इच्छा होयगी ता समय लूँगी । तब राजा अति प्रसन्न होय कहने भये-हे कमल वदनी मृगनयनी, श्वेत श्यामता, अरक्तता य तीन वर्ण को धरे, अद्भुत है तेरा ज्ञान अद्भुत बुद्धि तेरी, महा नरपति की पुत्री, अति नय की वक्ता, सब कला की पारगामिनी, सब भोगोपभाग की निधि तेरी प्रार्थना मैं धरोहर राखी, तू जब जो चाहे सो ही मैं दूँगा । अर सब ही राज लोक कैकई को देख हर्ष को प्राप्त भये अर चित्त मे चिंतवत भये, यह अद्भुत बुद्धि निधान है सो कोई अपूर्व वस्तु मांगगी अल्प वस्तु क्या माँग ?

प्रश्नावली

१—ककई का जन्म कहाँ हुआ ? उसके माता पिता के सम्बन्ध म आप क्या जानते हैं ?

२—ककई के गुण अपने शब्दों मे वर्णन कीजिये ?

३—ककई का विवाह किस के साथ हुआ और कैसे ?

४—ककई के विवाह के पश्चात् युद्ध क्यो हुआ ? किसके साथ हुआ ? ककई ने जो रण कुशलता दिखलाई उसका वर्णन कीजिये ?

५—ककई के जीवन से आप को क्या शिक्षा प्राप्त होती है ?

दीपावली



कार्तिक कृष्ण अमावस्या के सुप्रभात मे विहार प्रान्त स्थित पावापुरी के पावन उद्यान से भगवान महावीर प्रभु ईस्वी सन् से ५२१ वर्ष पूर्व सम्पूर्ण कर्म शत्रुओ पर विजय प्राप्त कर अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख अनन्त शक्ति आदि अनन्त गुणों को प्राप्त कर मुक्तिधाम को पहुंचे थे। उस आध्यात्मिक स्वतन्त्रता की पुण्य स्मृति में प्रदीप पंक्तियों के प्रकाश द्वारा यह विराट विश्व भगवान महावीर के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर अपनी आत्मा का निर्वाणोत्सव मनाने का प्रयत्न करता है।

प्रसिद्ध जैन ग्रन्थ हरिवंश पुराण से ज्ञात होता है कि भगवान महावीर ने सवज्ञता की उपलब्धि के पश्चात् भव्य-जीवों को तत्त्वोपदेश दे पावा नगरी के मनोहर नामक उद्यान युक्त वन में पधार कर स्वाति नक्षत्र के उदय होने पर कार्तिक कृष्ण की सुप्रभात की शुभ वेला मे अघातिया कर्मों का नष्ट कर निर्वाण प्राप्त किया उस समय दिव्यात्माओ ने प्रभु की पूजा की और अत्यन्त दीप्तिमान जलती प्रदीप पंक्ति के प्रकाश से आकाश तक को प्रकाशित करती हुई पावा नगरी सुशोभित हुई। सम्राट श्रेणिक आदि नरेन्द्रो ने अपनी प्रजा के साथ महान् निर्वाणोत्सव मनाया। उसी समय से मानव समाज द्वारा प्रतिवर्ष भगवान महावीर जिनेन्द्र के निर्वाण की अत्यन्त आदर तथा श्रद्धा पूर्वक नवद्य (लाडू) से पूजा की जाती है। अपने मकानो की सफाई करके उनको खूब सजाते हैं। परस्पर सग सम्बन्धियों और

जो मकान या नक्शा बना होता है, बाजार में बिकने को आती है, वह भगवान महावीर के समवशरण का ही प्रतिरूप है। भगवान ने जिस समय उपदेश दिया था, उसमें सभी जाति और वर्ग के मनुष्य पशु पक्षी आदि विद्यमान थे और उनके एक स्थान पर एकत्रित होने के लिए समवशरण की रचना की गई थी, उसी समवशरण की प्रतिच्छाया 'हटरी' बाजार में बिक्री के लिये आती है, जिसे लोग अपने घरों को लिपा पुता कर उसमें सजोकर रखते हैं।

इस प्रकार यह त्योहार जैनियों का ही सिद्ध होता है। इसका अभिप्राय यह नहीं है जनेतर लोग इस त्योहार को मना ही नहीं सकते या मनाते ही नहीं हैं। सब लोग इस त्योहार का पूर्ण उल्लास के साथ मनाते आ रहे हैं क्योंकि भगवान महावीर अपने काल की दिव्य विभूति थे। वह सर्वज्ञ थे, वीतरागी थे और हितोपदेशी थे। संसार उनके द्वारा उपकृत, प्रभावित और लाभान्वित हुआ दीपावली का त्योहार भगवान महावीर स्वामी की महत्ता का परिचायक है उन्होंने आत्म पवित्रता पर विशेष बल दिया। लोगों ने आरम्भ में मोक्ष रूपी लक्ष्मी की पूजा का विधान रखा। काल दोष के कारण लोगों की मनोवृत्ति दूषित हुई। वे द्रव्यपूजा और याचना करने लगे। जुआ खेलने लगे और रात भर जागरण करने लगे ताकि लक्ष्मीदेवी जब रात में उनके घर में द्वार पर पधारे तो उन्हें जाग्रत या सचेत पाकर उन्हें कृतार्थ करे। परन्तु भाव यह था कि हम लोग मोक्ष रूपी लक्ष्मी की पूजा करके भगवान के निर्वाण को पुण्य तिथि को मनावें और मोक्ष मार्ग पर आरूढ हों।

आज भी दीपमालिका का यह परम पवित्र मंगलमय दिवस भगवान महावीर के निर्वाण की पुण्य स्मृति को जाग्रत करता है। समग्र भारत में दीपमालिका की मान्यता भगवान महावीर के व्यक्तित्व के प्रति राष्ट्र समादर के परम्परागत भाव को स्पष्ट

जलाती है।

इतिहास का उज्वल आलोक दीपावली का सम्बन्ध भगवान महावीर स्वामी के निर्वाणसे स्पष्ट बतला रहा है। दीपावली का मगलमय पर्व आत्मिक स्वाधीनता का दिवस है। उसी दिन सध्या के समय भगवान के प्रमुख शिष्य गौतम गणधर को केवल्य लक्ष्मी की प्राप्ति हुई थी। इस कारण दिव्यात्माओं के साथ मानवो ने केवलज्ञान लक्ष्मी की पूजा की थी। इस तत्व को न जानने वाले पैसे की पूजा करके अपने को कृतार्थ मानते हैं।

दीपावली के उत्सव पर सभी लोग अपने अपने घरों को स्वच्छ कर उन्हे नयनाभिराम बनाते हैं। यथार्थ मे यह पर्व आत्मा को रागद्वेष दीनता दुबलता क्रोध, मान, माया लोभ आदि विकारो से बचाकर जीवन को उज्वल प्रकाशमय तथा सद्गुण सुरभि सम्पन्न बनाने मे है। यदि यह दृष्टि जाग्रत हो जावे तो यह मानव महावीर बनने के प्रकाश पूर्ण पथ पर प्रगति किये बिना न रहे।

दीपावली के दिन से वीर निर्वाण सम्वत् आरम्भ होता है। यह सब प्राचीन सम्वत्सर है। मगलमय भगवान महावीर के निर्वाण को अमगल नाशक मान कर भव्य लोग अपने अनेक कार्य दीपावली से ही प्रारम्भ करते हैं।

कुछ लोग दीपावली के पवित्र दिवस पर जुआ खेलकर शकुन मनाते है। किसी किसी जगह लडके बच्चे

आतिशबाजी भी छोड़ते हैं। इन कुप्रथाओं को त्याग कर धार्मिक रूप में ही दीपावली का पर्व मनाना योग्य है।

प्रश्नावली

१—दीपावली का त्योहार कब प्रचलित हुआ और कैसे ?

२—जैन धर्मानुयायी दीपावली का कैसे मनाते हैं ?

३—दीपावली की रात्रि में कुछ लोग रुपया पैसा आदि की पूजा करते हैं तथा जुआ आदि खेलते हैं क्या यह ठीक है और धार्मिक क्रिया है ?

४—दीपावली का त्योहार हमें क्या शिक्षा प्रदान करता है ?

५—क्या आप दीपावली मनाने के सम्बन्ध में कुछ सुझाव दे सकते हैं ?



आतिशबाजी भी छोड़ते हैं। इन कुप्रथाओं को त्याग कर धार्मिक रूप से ही दीपावली का पर्व मनाना योग्य है।

प्रश्नावली

१—दीपावली का त्यौहार कब प्रचलित हुआ और कैसे ?

२—जैन धर्मानुयायी दीपावली को कैसे मनाते हैं ?

३—दीपावली की रात्रि में कुछ लोग रुपया पैसा आदि की पूजा करते हैं तथा जुआ आदि खेलते हैं क्या यह ठीक है और धार्मिक क्रिया है ?

४—दीपावली का त्यौहार हमें क्या शिक्षा प्रदान करता है ?

५—क्या आप दीपावली मनाने के सम्बन्ध में कुछ सुझाव दे सकते हैं ?

